डाक्टर जल

-: लेखक :-

डा0 गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर', एन0 डी0

प्रधानाचार्य एवं प्रधान चिकित्सक

भारतीय प्राकृतिक

विद्यापीठ एण्ड चिकित्सालय,

पोस्ट विष्णूपुर 24, परगना

वेस्ट बंगाल

प्रकाशक-

तेजकुमार बुकडिपो (प्रा0) लिमिटेड, लखनऊ

1 त्रिलोकनाथ रोड़, हजरतगंज, लखनऊ-1

सर्वाधिकार सुरक्षित

द्वितीय संस्करण 1000 सन् 2008 ई. मूल्य 20/-

विषय-सूची

विषय			पृष्ठ
त्व-विवेचन	...	...	१
स्नान	...	...	८
ान	...	...	१७
किित्सा (Water Cure)	...	...	३२
ा रोगों का इलाज	...	...	४९

——:o:——

जल-तत्त्व-विवेचन

जल, प्राण-रक्षा के लिए प्रसिद्ध पञ्च तत्त्वों—आकाश, वायु, अग्नि, जल, तथा पृथ्वी, में चौथा आवश्यक तत्त्व है। यह जीवन के लिए उतना ही आवश्यक है, जितने अन्य चार तत्त्व।

जल अपने शुद्ध स्वरूप में एक ही होता है, किन्तु अन्य भौतिक पदार्थों के संयोग से वह कसैला, मीठा, तीता, तीखा, खट्टा, नमकीन, तथा गदला आदि हो जाता है।

जल का पहला रूप गैस, दूसरा ठोस, तथा तीसरा तरल है। गैस रूप में हम इसे बादल या भाप में देख सकते हैं। ठोस के रूप में बर्फ में, और तरल रूप में तो हम इसे नित्य प्रति, पीने, नहाने, तथा भोजन बनाने आदि के काम में लाते ही हैं।

जल में दो भाग हाइड्रोजन और एक भाग आक्सीजन का मिश्रण रहता है।

वस्तुओं को गीला करना, मिट्टी आदि को पिण्डाकार बना देना, तृप्त करना, प्राणियों को जीवित

रखना, प्यास बुझाना, पदार्थों को मृदु कर देना, ताप की निवृत्ति करना, सब प्रकार की स्वच्छता प्रदान करना, और कूपादि में से निकाल दिये जाने पर उन्हें पुनः भर देना, ये जल की वृत्तियाँ हैं।

श्रम, क्लान्ति, मूर्च्छा, पिपासा, तन्द्रा, वमन, विबंध और निद्रा को दूर करना, शरीर को बल देना, उसे ताजा व तृप्त करना, हृदय को प्रफुल्लित रखना, शरीर के दोषों को दूर करना, छः प्रकार के रसों का कारण बनना, तथा प्राणियों के लिए सदा-सर्वदा अमृत तुल्य सिद्ध होना आदि जल के साधारण कार्य हैं। तथा शीतलता, सरलता, हल्कापन, स्वच्छता, व्यापकता, मेट्यता (Permeatability) अस्थिरता (Mobility) तथा निर्गुणता इसके प्राकृत गुण हैं।

जल के अनेक नाम हैं, जैसे, पानी, पानीय, सलिल, नीर, कीकाल, अम्बु, आप, वारि, वारिक तोय, पय, पाथ, उदक, जीवन, वन, अम्भ, अर्ण, अमृत और धनरस आदि। इन नामों में जल का नाम जीवन और अमृत होना इस बात की ओर संकेत करता है कि प्राणियों का जीवन धारण करना जल पर ही अवलम्बित है, अथवा जल प्राणियों एवं वनस्पतियों का भी प्राण है।

वेदों में जल के गुणों की प्रशंसा और जल द्वारा रोग निवृत्ति के वर्णन स्वरूप कितनी ही ऋचाएँ हैं। उनमें से कुछ नीचे दी जाती हैं :—

'जलाषेणाभिषिंचत जलाषेणोपसिंचत।
जलाषमुग्रं भेषजं तेन नो मृड जीवसे ॥'

—अथर्व० कां० ६ सू० ५७ मं० २

अर्थात्, भगवान आदेश देते हैं कि जल से अभिसिंचन करो, जल से उपसिंचन करो, जल सर्वप्रधान औषधि है, इसके सेवन से जीवन सुखमय बनता है और शरीर की अग्नि भी आरोग्यवर्द्धक होती है।

'आप इद्वा उ भेषजोरापो अभीवचातनीः।
आपस् सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥'

ऋ० मं० १० सू० १३७ मं० ६

अर्थात्, जल ही औषधि है, जल रोगों का दुश्मन है, यह सभी रोगों का नाश करता है, इसलिये यह तुम्हारा रोग भी दूर करे।

'अमृतं वै आपः'

—तै० आ० १।१६

अर्थात्, अमृत का देने वाला जल ही है।

'आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनी।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ॥'

—अथर्व० कां० ३ सू० ७ मं०५

अर्थात्, जल ही औषधि है, जल रोग को दूर करता है, जल सब रोगों का संहार करता है, अतएव यह जल तुम्हें भी कठिन रोग के पंजे से छुड़ा ले।

इसी तरह अथर्व० ६।५७।१ से ३ तक में जल द्वारा रोगों की चिकित्सा पर बहुत कहा गया है।

'शन्नो देवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभिस्रवन्तु नः।'

—ऋ० १०।९।४

अर्थात्, हे ईश्वर! दिव्य गुणों वाला जल हमारे लिए सुखकारी हो, अभीष्ट पदार्थ की प्राप्ति कराये, हमारे पीने के लिए हो, सम्पूर्ण रोगों का नाश करे, तथा रोगों से पैदा होने वाले भय को न पैदा होने दे, और हमारे सामने बहे।

'इदमापः प्रवहत यत्किं च दुरितं मयि।
यद्वाहमभिदुद्रोह, यद्वा शेप उतानृतम्॥'

अर्थात्, हे परमात्मा! मुझ में जो पाप (भीतर-बाहर का अशौच) है, मैंने जो द्रोह—विश्वासघात किया या मैंने जो अपशब्द कहे हैं, या मैंने जो झूठ बोला है, उन सब को जल बहा ले जाय।

"यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
उशतीरिव मातरः।'

अर्थात् जो रसों में सबसे अधिक कल्याणकारक रस है, उस जल से हमें उसी तरह उत्तम सुख मिले जिस तरह पुत्र को माता के दूध से पुष्टि मिलती है।

'अप्सु में सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।'

अर्थात् सृष्टि रचयिता परमात्मा ने हमसे कहा है कि जल में सब औषधियाँ हैं।

'आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम।'

अर्थात्, जल से हमारी चिकित्सा हो और रोगों से शरीर का बचाव होकर हम दीर्घायु बनें।

'जीवनं जीविनां जीवो जगत्सर्वं तु तन्मयम्।
नातोऽत्यन्तनिषेधेन कदाचिद्वारि वार्यते॥'

अर्थात् सारे संसार में जीवों का जीवन जल ही है, इसलिये किसी हालत में जल का निषेध नहीं किया जा सकता है।

गीता में भगवान ने 'रसोऽहमप्सु कौन्तेय' अर्थात् हे, अर्जुन! जल में रसरूप से मैं ही विराजमान हूँ, कहकर जल की अपूर्व महिमा का बखान किया है।

पृथ्वी के प्राणियों के लिए जल की परमावश्यकता और अनिवार्यता का एक प्रमाण यह भी है कि सृष्टि में $\frac{3}{4}$ भाग जल और केवल $\frac{1}{4}$ भाग थल है, तथा

हमारे शरीर के वजन के १०० भागों में ७० भाग केवल जल है। अर्थात्, हमारी आँखों में ९८·७%, फेफड़ों में ७९%, हृदय में ७९·५%, रक्त में ८०%, हड्डियों में २५% और मस्तिष्क में ९०% जल होता है।

सांसारिक जीवन का तो आरम्भ ही जल से हुआ है जो वैज्ञानिक विकासवाद, पौराणिक अवतारवाद, तथा औपनिषदिक सृष्टिवाद–इन तीनों से सिद्ध है। अतः इसी जल से हमारा पालन-पोषण सम्भव है। बिना जल के हम जी नहीं सकते।

जल तीन प्रकार का होता है—मृदु, स्थायी कठोर, तथा अस्थायी कठोर। खंदकों का गदला पानी, बहती दरिया का पानी, वर्षा का पानी, तथा उथले कुओं का पानी मृदु होता है। मृदुजल स्वास्थ्य के लिए बहुत हितकर नहीं होता है।

सोतों, गहरे कुओं, एवं नल का पानी स्थायी कठोर होता है। चूना आदि खनिज जो जल में घुल जाते हैं वे जल को कठोर बना देते हैं। कठोर जल स्वास्थ्य-वर्द्धक होता है।

वर्षा का संगृहीत जल प्रायः अस्थायी कठोर होता है, जो स्वास्थ्य के लिए कम हितकर है।

उत्तम स्वास्थ्य के लिए जल अमूल्य प्राकृतिक टॉनिक है, और रोगों को दूर करने के लिए अचूक दवा। जल के प्रयोग से रोग क्यों और कैसे दूर होते हैं, इसका कारण जल में अपनी कुछ विशेषताओं का होना है। जल में उन आरोग्यकारक गुणों (Remedial powers) की विद्यमानता है जो चिकित्सा के क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। जल की वे विशेषताएँ अथवा गुण निम्नलिखित हैं :—

(१) जल किसी वस्तु के सम्पर्क में आने पर अपनी ठंढक या गर्मी उसे बड़ी शीघ्रता से दे सकता है और उसकी ठंढक या गर्मी ले सकता है।

(२) जल किसी भी अन्य वस्तु की अपेक्षा ठंढक या गर्मी अधिक देर तक रोके रह सकता है।

(३) जल तरल होने के कारण चिकित्सा-विधियों में आसानी से काम आ सकता है।

(४) जल अन्य चीजों को घुलाकर बहा सकता है, जिसकी वजह से ही वह स्नान, एनिमा आदि के लिये प्रयुक्त होता है।

(५) शरीर में ताप सम्बन्धी तीन यन्त्र हैं। पहले को उष्ण उत्पादक, दूसरे को उष्ण प्रसारक, और तीसरे को उष्ण वाहक कहते हैं। इन्हीं के द्वारा

शरीर में गरमी का उत्पादन, प्रसारण, और वहिष्करण होता है। जल इन तीनों को प्रभावित करता है, विशेषकर पिछले दो यन्त्रों को।

दैनिक स्नान

श्री बर्नर मैकफैडन ने लिखा है कि मनुष्य की त्वचा की क्रियाशीतलता का मूल्य किसी से छिपा नहीं है, जिसके लिए हमारे दैनिक स्नान का बहुत बड़ा महत्त्व है। नियमित रूप से त्वचा की सफाई होते रहने से बहुत सी बीमारियों की रोकथाम और निराकरण हो जाता है। परन्तु स्नान करने का भी एक वैज्ञानिक ढंग है, केवल दो-चार लोटे पानी शरीर पर डाल लेने को ही स्नान नहीं कहते जैसा कि अधिकांश लोग समझते और करते हैं।

स्वस्थ जीवन के लिए प्रतिदिन भोजन और व्यायाम जितने जरूरी हैं, दैनिक स्नान उससे कम जरूरी नहीं है। भारतीय धर्मग्रन्थों में स्नान की उपादेयता को लक्ष्य करके उसको नित्य कर्तव्य कहा है। मूत्रद्वारा जिस प्रकार क्लोराइड्स एवं नमक निकला करते हैं, उसी तरह अम्ल आदि द्रव्य पसीने के रूप में हमारे रोमकूपों द्वारा निकला करते हैं।

यदि शरीर को नित्य प्रति जल से धोकर शुद्ध न किया जायगा तो पसीने और मलों से रोमकूप बंद हो जायँगे जिससे रक्त दूषित होकर विभिन्न रोगों का कारण बनेगा। यदि हो सके तो स्नान सुबह-शाम दोनों वक्त करना चाहिए। जाड़ों में नहीं तो गर्मियों में ऐसा करने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए। स्नान का समय सबेरे सूर्योदय से प्रथम तथा शाम को सूर्यास्त के ठीक बाद है। स्नान में, जाड़ों में १०-१५ मिनट और गर्मियों में २५-३० मिनट तक लगाना काफी होगा।

स्नान में आलस्य नहीं करना चाहिए। अनुभव से जाना गया है कि बिना स्नान किये प्रातःकाल भोजन कर लेने से भोजन ठीक से हजम नहीं होता और धीरे धीरे मन्दाग्नि रोग धर दबाता है। इसीलिये पुराने लोग आज भी स्नान किये बिना भोजन ग्रहण नहीं करते। मनीषियों ने कहा है :—

'शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानमाचरेत्।
लक्षं विहाय दातव्यं कोटिं त्यक्त्वा हरिं भजेत्॥'

अर्थात्, सौ काम छोड़कर भोजन, हजार काम छोड़कर स्नान, लाख काम छोड़कर दान, तथा करोड़ काम छोड़कर हरि-भजन करना चाहिए।

स्नान का जल ताजा, निर्मल और ठंढा होना चाहिए। साधारणतः ऐसे जल का तापमान शरीर के तापमान से थोड़ा कम हो तो ठीक। स्नान के लिए कूप-जल जो अधिक व्यवहार में आता है, उत्तम है। क्योंकि उसका तापमान आप से आप ऋतु और समयानुसार बदलता रहता है जो यथेष्ट सुखप्रद, साथ ही लाभकारी सिद्ध होता है।

स्नान करते वक्त साबुन का व्यवहार भूले से भी नहीं करना चाहिए। कारण, साबुन को पानी के योग से बदन पर मलने से उसके सूक्ष्म कण रोमकूपों में घुसकर वहीं सट जाते हैं जिससे रोमकूप बंद से हो जाते हैं विशेषकर उस दशा में जब स्नान का जल काफी मृदु नहीं होता। दुःख का विषय है कि आधुनिक वातावरण में रहने वाले अधिकांश व्यक्तियों का स्नान साबुन के बिना पूरा ही नहीं होता। उनकी समझ से, जो कि सही नहीं है, शरीर को मल एवं दुर्गन्धरहित बनाये रखने का सबसे सहज साधन साबुन ही है। ऐसे लोगों को पता होना चाहिए कि साबुन रोमकूपों में प्रविष्ट होकर रक्तवाहिनी नलिकाओं को कमजोर बना देता है, चमड़ी को शुष्क कर देता है, सोडियम सिलिकेट, तेल, ओलेइक एसिड,

स्टेरिक एसिड, नैप्था, तथा रेजिन मुख्य वस्तुएँ हैं जिनके मेल से अच्छे से अच्छा और घटिया से घटिया साबुन बनता है, परन्तु उनमें तेल को छोड़कर अन्य सभी वस्तुएँ ऐसी हैं जो शरीर की त्वचा को शत प्रतिशत हानि पहुँचाती हैं, यहाँ तक कि अगर इनका प्रयोग त्वचा पर देर तक किया जाय तो एकजीमा आदि कितनी ही त्वचा की बीमारियाँ हो जायँ।

शरीर के अलावा आजकल बालों को भी साबुन से धोने का रिवाज और फैशन चल पड़ा है, जिसका परिणाम यह है कि क्या जवान, क्या बूढ़े, प्रायः सभी के बाल समय से पहले ही सफेद हो जाते हैं, जिसका कारण प्रतिदिन साबुन के व्यवहार के कारण बालों की जड़ों का कमजोर हो जाना ही है। साबुन के प्रयोग से बाल बेतरह झड़ने भी लगते हैं। अतः जो लोग त्वचा और बाल की उपर्युक्त बीमारियों से बचना चाहते हैं, उन्हें स्नान के समय साबुन का व्यवहार त्याग देना चाहिए और उसकी जगह, आँवला, बेसन, दही, नींबू या काली मिट्टी का प्रयोग करना चाहिए।

त्वचा के मैल को छुड़ाने के लिए साबुन की

जगह निम्नलिखित निर्दोष वस्तुओं को लाभ के साथ काम में लाया जा सकता है :—

(१) स्नानोपरान्त अंग प्रत्यंग को अपनी हथेलियों से शुष्क घर्षण करके।

(२) खुरदुरे तौलिया से रगड़ कर।

(३) मिट्टी को साबुन की तरह इस्तेमाल करके।

(४) बेसन और पानी के घोल से शरीर को मलकर।

(५) भुने हुए और ठंढा किये हुए खट्टे नींबू के रस को पानी के साथ बदन पर मलकर।

शरीर ठंढा रहते स्नान नहीं करना चाहिए, अपितु स्नान के पहले शरीर को किसी विधि से थोड़ा गरम कर लेना चाहिए। ऐसा करने के लिए शुष्क घर्षण-स्नान सर्वोत्तम है। विधि यह है :—

हाथ की हथेलियों, खुरदुरे तौलिया, स्पञ्ज या बहुत नरम और मुलायम ब्रश लेकर उससे शरीर के अंग-प्रत्यंग को चोटी से लेकर एड़ी तक बारी-बारी से इतना और इस प्रकार रगड़ें कि वे गरम हो जायँ और उन पर ललाई छा जाय। शिर से शुरू करें, उसके बाद मस्तक, फिर चेहरा और गर्दन। फिर

एक-एक करके दोनों हाथों की कलाई की ओर से रगड़ना शुरू करके कंधों की ओर रगड़ें। हाथों के बाद कंधों, बगल, पेट और पीठ को रगड़ें। सबके अंत में पैरों को इस प्रकार रगड़ें कि रगड़ते समय वे सीधे रहें, साथ ही झुककर पंजों की ओर से रगड़ते हुए हाथों को जाँघों की ओर लायें। शुरू शुरू में यह मालिश धीरे धीरे ही होनी चाहिए। यह आदत पड़ने पर इसे कड़े हाथों और अधिक देर तक करना चाहिए। एक-एक अंग को ५-६ बार रगड़ना काफी होता है।

स्नान के प्रथम इस शुष्क घर्षण-स्नान का बड़ा महत्त्व है। इससे शरीर का रक्त अधिकाधिक त्वचा की ओर पहुँचता है। जिससे रक्त शिराएँ फैलती हैं और शरीर के रोमकूप खुल जाते हैं, परिणाम यह होता है कि उसके बाद ठंढे पानी से स्नान करने से त्वचा नीरोग और निर्मल हो जाती है, और खुले हुए रोमकूपों द्वारा शरीर का भीतरी मल जो पसीने के रूप में भी बाहर निकलता रहता है, बाहर निकल जाता है। इस क्रिया से समूचे शरीर में एक प्रकार की बिजली दौड़ने लगती है और शरीर पर चमक आ जाती है। इस क्रिया से सारे शरीर की गर्मी

समानता को प्राप्त होती है। शरीर में स्फूर्ति जान पड़ने लगती है। और मनुष्य सर्दी-गर्मी की अनेक बीमारियों से बचा रहता है। बर्नर मैकफैडन ने एक जगह लिखा है कि एक नवयुवक ने केवल इस घर्षण स्नान से ही अपने को भयानक यक्ष्मा रोग से मुक्त कर लिया। खाँसी और जुकाम तो इससे होते ही नहीं।

स्नान के प्रथम किया गया उपर्युक्त शुष्क घर्षण स्नान यदि प्रातःकाल की हल्की धूप में किया जाय तो वह निश्चय ही अधिक लाभकारी होता है। क्योंकि उस हालत में शरीर की पुष्टि के साथ साथ उसे विटामिन 'डी' की भी प्राप्ति होती है जो उत्तम स्वास्थ्य के लिए एक बहुत आवश्यक वस्तु है।

शुष्क घर्षण स्नान के बाद तुरंत विपुल ठंढे जल से स्नान करना आरम्भ करना चाहिए। पहले सिर को धोना चाहिए, तत्पश्चात् क्रमशः अन्य अंगों को। ऐसा करने से शरीर की अनावश्यक उष्णता सिर से होती हुई पैरों की तरफ से निकल जाती है और शरीर तरोताजा हो जाता है। स्नान पैरों की तरफ से आरम्भ करने से आँखों और सिर में गर्मी चढ़ जाने का भय रहता है जिससे अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

स्नान के बाद सूखी तौलिया से समूचे बदन को पोंछकर एक बार पुनः उपर्युक्त शुष्क घर्षण स्नान को दोहराना चाहिए। मतलब यह कि स्नान के पहले और बाद—दोनों बार शुष्क घर्षण-स्नान करने से ही स्नान का पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सकता है।

स्नान कर चुकने के एक घंटा बाद तक भोजन नहीं करना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से पाचन-क्रिया बिगड़ जाती है। इसी तरह भोजन करने के तुरंत बाद स्नान करना वर्जित है। इससे भी स्वास्थ्य को बड़ी हानि पहुँचती है।

दैनिक स्नान के पहले कम से कम जाड़ों में तेल-मालिश का भी विधान है, जो स्वास्थ्य के लिए उत्तम है। यह तेल-मालिश हल्की धूप में करने से अधिक लाभप्रद सिद्ध होती है। इस मालिश को शुष्क घर्षण-स्नान के बाद करना चाहिए। शेष सब विधि स्नान की वही रहेगी। तेल-मालिश में शुद्ध सरसों का तेल व्यवहार करना चाहिए।

दैनिक जल-स्नान बहुत देर तक भी नहीं करना चाहिए। स्नान करने के लिए २० मिनट बहुत काफी हैं। सिद्धान्त यह है कि शरीर में कँपकँपी लगने लगे अथवा हाथ-पैरों में ठिठुरन होने लगे तो स्नान बंद कर

देना चाहिए। इस सिद्धान्तानुसार गर्मियों में २० मिनट तक, वर्षा ऋतु में १० मिनट तक तथा जाड़ों में ३ से ५ मिनट तक स्नान करना चाहिए।

स्नान करते समय शरीर पर हवा के झोंके नहीं लगने चाहिए। इसीलिये स्नान बंद कमरे में करना उत्तम होता है। बन्द कमरे में आजादी के साथ नंगे बदन भलीभाँति स्नान करने का भी सुभीता रहता है।

उपर्युक्त विधि से स्नान करने के लाभ अकथनीय हैं। इससे कितने ही रोगों, जैसे फोड़ा-फुन्सी, दाद-खाज, मुहाँसा, झाईं, दमा, गठिया तथा बवासीर आदि से अनायास और मन्त्रवत् छुटकारा मिल जाता है। वाग्भट, सूत्रस्थान, अ० २ में आया है कि स्नान, भूख, बल, आयु और जीवनी शक्ति को बढ़ाता है। चर्मरोग, मल, थकावट, पसीना और उसकी दुर्गन्ध, तन्द्रा, आलस, प्यास, जलन, तथा पाप को नाश करता है, साथ ही रक्त को विशुद्ध करता है एवं सम्पूर्ण इन्द्रियों को स्वच्छ और निर्मल बना देता है। यथाः—

'दीपनं वृष्यमायुष्यं स्नानमोजोबलप्रदम्।
कण्डूमलश्रमस्वेदतन्द्रातृड्दाहपाप्मनुत्॥
रक्तप्रसादनं चापि सर्वेन्द्रियविशोधनम्।'

जल-पान

जल, भोजन का एक बहुत बड़ा आवश्यक अंग होता है। जल के योग से ही शरीर के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवयवों में रुधिर दौड़कर उनका पोषण करता है। पाचन, रक्त-संचालन, एकीकरण तथा शारीरिक विषों का वहिष्करण आदि सब क्रियाएं, जल के शरीर में उपस्थित रहने पर ही सम्भव रह सकती हैं। जो जल त्वचा से स्वेद के रूप में, फेफड़ों से वाष्प के रूप में, तथा पेट से मलमूत्र के रूप में निकलता है वह शरीर के विषों के बोझ से लदा होता है, क्योंकि एक वैज्ञानिक के कथनानुसार, 'शरीर जहर बनाने का कारखाना है'। ऐसी दशा में यदि त्वचा, फेफड़े, आँतें और गुर्दे अपना-अपना काम बन्द कर दें तो जीवन-रक्षा एक क्षण के लिए भी असम्भव हो जाय। उदाहरणार्थ, मनुष्य के पसीने में अनेक अन्य विषों के अतिरिक्त एक प्रतिशत का आधा केवल 'यूरिया' जहर होता है। इसी प्रकार, मूत्र में लगभग २ प्रतिशत 'यूरिया' और बहुत से अन्य प्रकार के विषों का समावेश रहता है। यदि त्वचा के छिद्र और मूत्रेन्द्रिय इन विषों को निकाल फेंकने में तनिक भी ढिलाई कर दें तो

जीवन तुरंत संकट में पड़ जाय और परिणामस्वरूप कुछ ही मिनटों में मनुष्य की मृत्यु भी अवश्य हो जाय यह निश्चित है।

जल शरीर के भीतर वही कार्य करता है जो वह संसार में प्रत्येक स्थान पर करता है, अर्थात् वह शरीर के भीतर उपस्थित दूषित द्रव्यों को घुलाकर ढीला करता है और तब उन्हें अपने साथ लेकर शरीर के उत्सर्ग मार्गों द्वारा बाहर निकल जाता है। जल शरीर में प्रवेश करता है शुद्ध और स्वच्छ, परन्तु उसमें से वह निकलता है अशुद्ध और अस्वच्छ होकर। यही कारण है जो जल-पान को एक प्रकार का 'आन्तरिक स्नान' कहा गया है।

उचित रीति से और यथेष्ट मात्रा में जल पीने से जीवन धारा (रक्त प्रवाह) विशुद्ध होकर, अबाध गति से अपना कार्य करने लगती है, जो एक स्वस्थ शरीर के लिए नितांत आवश्यक है।

जल, केवल भोजन को शरीर के भीतर ले जाने, तथा शरीर स्थित मल को बाहर ले आने का ही काम नहीं करता, अपितु वह स्वयं भी और एक प्रबल अत्यावश्यक जीवन तत्व है, जिसके बिना शरीर ठीक

नहीं रह सकता। शरीर में जल की स्थिति, शरीर को अधिक गर्म होने से भी बचाती है।

भोजन के मध्य में जल-पान

भोजन करते समय पानी पीना चाहिए या नहीं ? इस प्रश्न का यथार्थ उत्तर देने के पूर्व हमें इस बात पर विचार कर लेना चाहिए कि हमारा भोजन कैसा है, अथवा हम कैसा भोजन करते हैं। अगर हमारे भोजन में नमक, मसाला, मिर्च, खटाई तेल आदि प्यास उत्पन्न करने वाली वस्तुओं की अधिकता होगी तो अवश्य ही हमें भोजन के बीच में पानी पीने की आवश्यकता होगी और तब हमें स्वभावतः उन अखाद्य एवं अप्राकृतिक वस्तुओं के दूषित पदार्थ को नष्ट करने के लिए पानी का सेवन करना ही चाहिए, अन्यथा उस समय हठ करके पानी न पीने से हानि की बराबर आशंका है।

इसके विपरीत, यदि हमारा भोजन उक्त सभी अखाद्य वस्तुओं से रहित, सात्विक एवं प्राकृतिक है, साथ ही साथ हम प्रत्येक ग्रास को खूब चबा-चबाकर खाना भी जानते हैं, तो भोजन के बीच में हमें पानी पीने की इच्छा उत्पन्न ही न होगी। पहली दशा में भी भोजन के साथ लोटे दो लोटे पानी पीना अत्यन्त

बुरा है। क्योंकि ऐसा करने से पेट में कीचड़ सा बन जाता है, जिससे पेट के अन्दर प्राकृतिक रूप से निकलने वाले पाचक रसों का प्रभाव खाये हुए भोजन पर नहीं पड़ पाता, जिसके परिणामस्वरूप बदहज्मी, कोष्ठवद्धता आदि बहुत सी पेट की बीमारियाँ आ घेरती है। इसलिये जब ऐसे खाद्य पदार्थ खाये जायँ जिनके खाने से खाते समय जल पीने की आवश्यकता पड़े तो उस वक्त न तो इतना पानी पी ले कि अन्न हजम ही न हो और न यही करे कि पानी बिलकुल पीये ही नहीं। बल्कि भोजन के बीच आवश्यकतानुसार, थोड़ा-थोड़ा करके कई बार पानी पीना चाहिए। आयुर्वेद के आचार्यों की भी यही आज्ञा है। यथा—

'अत्यम्बुपानान्न विपच्यतेऽन्नं
निरम्बुपानाच्च स एव दोषः।
तस्मान्नरो वह्निविवर्धनाय
मुहुर्मुहुर्वारि पिवेदभूरि ॥'

खाते समय जिसको खुश्की सताती हो, और बीच-बीच में पानी पीने की प्रवृत्ति विशेष हो, वह यदि जल पीने के बजाय मट्ठा, तक्र व दही का सेवन करे तो पानी से अधिक लाभ उठा सकता है।

इस सम्बन्ध में एक बात और भी न भूलनी

चाहिए। वह यह कि, जो कुछ हम खाते हैं उसमें दो तिहाई से लेकर तीन चौथाई तक जल का भाग पहले ही विद्यमान रहता है, इसलिये खाते समय ऊपर से जल कम पीना चाहिए। और खाने के बीच-बीच पानी पीने में पूरी आजादी वरती जायगी तो मुँह में पाचन रस (Saliva) की उत्पत्ति में कमी होकर चर्वण क्रिया को बाधा पहुँचेगी जिससे प्रत्येक ग्रास को बिना भली-भाँति चबाये ही निगल जाने की आदत पड़ जायगी जो स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक है।

प्रकृति का नियम है कि भोजन करने और पानी पीने के समय अलग-अलग होने चाहिए। पशु पक्षी तक इस नियम की अवहेलना नहीं करते। मगर यह तभी सम्भव है जब हमारा भोजन सात्विक, सादा एवं प्राकृतिक हो। प्रकृति के इस सुनहले नियम से इस तथ्य पर पूर्ण रूप से प्रकाश पड़ता है कि वास्तव में मानव का भोजन कैसा होना चाहिए। अप्राकृतिक भोजन के समर्थकों को प्रकृति के इस इशारे को समझने की कोशिश करनी चाहिए।

भोजन के आदि और अन्त में जल-पान

वैद्यक ग्रन्थों में उल्लेख है:—

'भुक्तस्यादौ जलं पीतं कार्श्यमंदाग्निदोषकृत्।'

अर्थात् भोजन करने के लिए बैठते ही, पहले जल पीने से कमजोरी और मंदाग्नि उत्पन्न होती है।

और भी—

'आदावन्ते विषं वारि मध्यमे चामृतोपमम्'

अर्थात् भोजन के आदि और अन्त दोनों में पानी पीना विष पीने के समान है, और बीच में अमृत तुल्य।

इसके अतिरिक्त, पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने प्रयोग करके देखा है कि भोजन के तुरन्त पहले और तुरन्त बाद को तो नहीं, किन्तु भोजन के कम से कम आधा या एक घन्टा पहले एक गिलास, तथा भोजन के लगभग दो घन्टा बाद दो गिलास पानी पीना अति उत्तम है। इस नियम का पालन करने वाला व्यक्ति पेट के रोगों का शिकार कम होता है, साथ-साथ ही उसे भोजन के बीच में पानी पीने की प्रवृत्ति भी नहीं होती।

समष्टि रूप से प्राकृतिक आहार करने की आदत डालकर, भोजन के आदि, अन्त तथा मध्य में स्वाभाविक रूप से पानी न पीना सर्वोत्तम है। मगर फिर भी यदि पानी पीने की इच्छा भोजन के बीच में हो तो थोड़ा पानी अवश्य पी ले। भोजन से आधा या एक घंटा पहले, तथा भोजन के दो घंटे बाद दो या

एक गिलास पानी अवश्य पीयें। प्यास लगने पर पानी न पीना स्वास्थ्य के लिए हर हालत में हानिकारक है। प्यासे को भोजन नहीं करना चाहिए। इसी तरह भूखे को जलपान वर्जित है। पहले से गुल्मादि, पेट की अनेक भयानक व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और दूसरे से जलोदर (Dropsy) रोग होने का भय रहता है। यथा :—

'तृषितस्तु न चाश्नीयात्क्षुधितो न पिवेज्जलम्।
तृषितस्तु भवेद्गुल्मी क्षुधितस्तु जलोदरी॥'

ज्वरादि तृषाकारक रोगों में जल-पान—ज्वर में अधिक प्यास लगने पर, रोगी को पानी न देना, एक भयंकर भूल है। ज्वर में प्यास लगना स्वाभाविक है, इसलिए ज्वर के रोगी को, जब-जब वह जल की इच्छा प्रकट करे, थोड़ा-थोड़ा पानी जरूर देना चाहिए। ज्वर के रोगी के शरीर में जो जल का अंश होता है, वह ज्वर की ज्वाला को शान्त करने तथा तज्जनित विषों को पसीना, पेशाब आदि के रूप में बाहर निकालने में अधिकाधिक व्यय होता रहता है।

इसलिए ज्वर में अधिक प्यास लगती है। उस समय रोगी को पानी न देने से उसका रक्त गाढ़ा हो जाता है और उसमें उष्णता अधिक बढ़ जाती है। जो

ज्वर के उत्तरोत्तर बढ़ने देने में सहायक होती है। इसी प्रकार सब प्रकार की छूत की बीमारियाँ, जैसे हैजा, प्लेग, चेचक आदि में रोगी को यथेष्ट पानी पीने की सलाह देना अत्यन्त आवश्यक है। लकवा के रोगी को भी पानी पीने से रोकना भूल है।

जुकाम की हालत में खूब पानी पीना चाहिए। अन्यथा विजातीय द्रव्य जो जुकाम के रास्ते निकल रहा है, पानी पीना बन्द कर देने से उसके भीतर ही दब जाने का खौफ रहता है जिससे ज्वर आदि में दुखदायी व्याधियों का सूत्रपात होना अनिवार्य हो जाता है। लेखक ने जुकाम के सैकड़ों मरीजों को केवल पानी पिलाकर चंगा किया है। कड़े से कड़ा जुकाम हो, कफ नहीं छँटता हो, सर भारी बना रहता हो, उपवास के साथ तीन दिन तक रात को सोने जाने के प्रथम केवल एक गिलास सहने योग्य गर्म पानी पी लिया करें, जुकाम के सारे दोष तीन दिन के अन्दर में छूमन्तर हो जायेंगे। परीक्षित है।

पुराना कोष्ठवद्धता, मोटापा, वातरोग, पीलिया तथा पथरी रोग में दिन में १० से १२ गिलास पानी आश्चर्यजनक लाभ पहुँचाता है। क्योंकि ये रोग आँतों या

गुर्दे की खराबी से उत्पन्न होते हैं एवं आँत तथा गुर्दे तभी खराब होते हैं जब उनमें दूषित द्रव्य जमा होकर सड़ने लगता है और निकलने का कोई मार्ग नहीं पाता। पानी के यथेष्ट सेवन से दूषित द्रव्य तरल होकर उत्सर्ग मार्गों द्वारा बाहर निकल जाता है और रोगी चंगा हो जाता है। एक डाक्टर का कहना है कि अगर संसार का हरएक मनुष्य रोज आठ आउंस के ८ गिलास पानी पीये और मांस खाना छोड़ दे तो दो पीढ़ियों के अन्दर दुनियाँ में बहुमूत्र रोगों का कहीं भी नामोनिशान नहीं रह जायगा। यदि अफीम, गाँजा, भाँग, तम्बाकू शराबादि नशीली वस्तुओं का सेवन करने वाला व्यक्ति अधिक मात्रा में जल पीये तो कुछ काल में उनकी ये आदतें छूट जायेंगी।

उपवास काल में जल-पान—उपवास काल में जितना महत्त्व एनिमा का है, उससे कहीं अधिक महत्त्व उस समय जल पीने को देना चाहिए। कारण, एनिमा से केवल एक अंग आँत की सफाई होती है किन्तु पीये हुए जल से शरीर के अंग प्रत्यंग की शुद्धि हो जाती है। यदि यह कहा जाय कि उपवास बिना यथेष्ट जल पीये सफल नहीं होता, तो यह मिथ्या नहीं है। उपवास करने वाले को दिन में कई बार थोड़ा-थोड़ा करके खूब पानी पीना

चाहिए। २४ घंटे के अन्दर ८ सेर से १० सेर तक पानी पीया जा सकता है। जल में यदि नीबू का रस डालकर पिया जाय तो और भी उत्तम है।

सम्भोग के उपरान्त जल-पान—स्त्री-प्रसंग से शारीरिक शक्तियों का क्षीण होना अनिवार्य है, अतः उस क्षीणता को पूर्ण करने के लिए सम्भोग के उपरान्त, स्त्री, पुरुष दोनों को जी भरकर शीतल जल पीना चाहिए। इस क्रिया द्वारा मनुष्य का साधारण स्वास्थ्य बहुत कुछ सुरक्षित रह सकता है।

काम के समय जल-पान—कोई भी कार्य हो मानसिक वा शारीरिक शक्ति का ह्रास तो होता ही है। अतः उस खोयी हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करने के लिए और बचे हुए कार्य को दूने उत्साह से करने के लिए, काम के बीच में हमें कई बार पानी पीना चाहिए। इससे शरीर के कल-पुर्जे जो काम करते-करते गर्म हो जाते हैं तरो-ताजा हो जाते हैं और उनमें नवशक्ति का संचार हो जाता है।

हमारे वेदों की भी यही आज्ञा है—'अपोऽशान कर्म कुरु' अर्थात जब कार्य में संलग्न होवो तो जल-पान करो।

कौन-सा, और कैसा जल पीएँ ?

जल-पान की उपयोगिता जान लेने पर यह जान लेना ह जरूरी है कि हमें कौन-सा, और कैसा पानी पीने क काम में लाना चाहिए। साधारणतः बिना औटाया आ, शुद्ध, एवं ताजा जल ही पीने के काम में उत्तम । किन्तु जिस कुएँ या जलाशय का पानी काम में ाया जाय उसमें या उसके आसपास किसी प्रकार की न्दगी नहीं होनी चाहिए, तथा उस जल में किसी अनैन्द्रिक निज पदार्थ का समावेश न होना भी अत्यन्त आवश्यक । और यदि तनिक भी संदेह हो कि अमुक कुएँ या ाशय में अनेक अनैन्द्रिक खनिज पदार्थ, जैसे चूना, ड़िया, मिट्टी या फिटकरी मिले हैं, या जो जल े के काम में आता है विकारयुक्त है, तो उसे छी तरह उबाल कर, छान ले और तब ठंढा कर काम में लावे। जल के विषय में महर्षि यम का न है:—

'दिवार्करश्मिसंस्पृष्टं रात्रौ नक्षत्रभासितैः।
सन्ध्ययोश्च तथोभाभ्यां पवित्रं जलमुच्यते॥'

अर्थात, दिन में सूर्य-किरण, रात्रि में चन्द्र-नक्षत्र-ण और संध्या में दोनों किरणों से युक्त वायु-प्रवाह-जल ही उत्तम है। जिस जल पर सूर्य-किरण

नहीं पड़ी अथवा जिस जल को वायु नहीं सोखता, वह अति स्वच्छ रहने पर भी कफ उत्पन्न करता है। ऐसे जल को गरम करके ठण्डा होने पर ही पीना अच्छा है। गर्म करके ठंढा किया हुआ जल कास, श्वास, ज्वर, कफ, वात, आम और अजीर्ण को नाश करता है। नारियल का जल मधुर, पाचक और पित्त नाशक होता है यह लाभ के साथ पिया जा सकत है। अन्य कृत्रिम जल जैसे सोडा, लेमोनेड आदि पीन रोग को निमन्त्रण देना है।

पीने के लिए वर्षा काल का जल, जिसमें कि प्रकार का दोषयुक्त पदार्थ न मिला हो, सर्वोत्त है। स्रावित जल में जितने रोगनाशक गुण होते उससे कहीं अधिक गुण बरसात के जल में हो हैं। इसी वर्षा के जल के लिए वेदों में—'शिवा सन्तु वार्षिकीः' वाक्य आया है जिसका अर्थ है, हम वर्षा का जल लाभकारी होता है। यथा—

'नादेयम् नादेयम् शिशिरबसन्ते च नादेयम् ।'

तथा

हिमवतः प्रस्रवन्ति सिन्धौ समह संगमः।
आपोह मह्यं-तद् देवीर्ददन् हृदयोत भेषजम्।।,

अथर्ववेद कां० ६ सू० २४ मं०

अर्थात् जल हिमालय से बहकर गंगा आदि नदियों द्वारा समुद्र में मिलता है। ऐसी नदियों का जल मेरे हृदय के ताप को शान्त करने के लिए औषधि रूप हो।

गर्म जल का प्रयोग कितने ही रोगों में रामबाण का काम करता है यथा—

'नोर्ध्वजत्रुगदश्वासकासोरःक्षतपीनसे ।
गलभङ्गप्रसंगे च, स्वरभेदे च तद्धितम् ।।'

अर्थात् जुकाम, कोष्ठवद्धता, यकृत सम्बन्धी रोग गठिया, गले के रोग, फेफड़े के रोग, खाँसी, साँस फूलना, पीनस, एवं गला बैठना आदि रोग केवल गर्म पानी के इस्तेमाल से दूर हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त साधारण सिर पीड़ा, तथा स्त्रियों के मासिक धर्म के समय होने वाली पीड़ा के निवारण के लिए गर्म जल का पीना लाभकर है। सबेरे उठते ही एक गिलास गर्म पानी पीने से यह रोग अपने आप ही नष्ट हो जाते हैं।

बर्फ मिला हुआ पानी भूल से भी नहीं पीना चाहिए। ऐसा जल तृषाकारक एवं अनेक अवगुणों से युक्त होता है।

जल कितना, और कैसे पीएँ ?

यह तो सत्य ही है कि जितनी प्यास लगे उतना पानी अवश्य ही पीना चाहिए, किन्तु एक साँस में लोटा दो लोटा पानी पी जाना अतीव हानिकारक है। क्योंकि अधिक और एक साँस में पानी पीने से जठराग्नि शान्तप्राय हो जाती है जिससे खाया हुआ अन्न उत्तमता से नहीं पचता। जिस प्रकार भूख से अधिक खाना बुरा है उसी प्रकार प्यास से अधिक पानी पीना भी। पानी या कोई भी पेय वस्तु घूँट-घूँट चूसने की तरह तथा स्वाद ले-लेकर पीना चाहिए जिससे उसके प्रत्येक घूँट में प्राकृतिक पाचक रस मिश्रित होकर उसे पचने योग्य एवं गुणकारी बना दे।

एक विद्वान का मत है—

'द्विगुणं च पिवेत्तोयं सुखं सम्यक् प्रजीर्यति।'

अर्थात् भोजन में जितना अंश ठोस हो, उससे दूना पानी पीना चाहिए। दूसरे आचार्य का मत है कि पेट का दो भाग भोजन, एक भाग जल से भरकर और चौथा भाग वायु के ठीक संचरण के लिए खाली छोड़ देना चाहिए।

यथा—

'कुक्षेर्भागद्वयं भोज्यैस्तृतीये वारि पूरयेत्।
वायोः संचारणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत्॥'

प्रयोगों से पता लगा है कि प्रत्येक मनुष्य की त्वचा द्वारा पसीने के रूप में, फेफड़ों से, श्वास-प्रश्वास द्वारा वाष्प बनकर, मूत्राशय से मूत्र के रूप में तथा मलाशय द्वारा मल के साथ, कुल मिलाकर तीन सेर जल शरीर से प्रतिदिन निकलता है। इसलिए यह युक्तियुक्त है कि जिस परिमाण में पानी नष्ट होता है, उसी परिमाण में पानी ग्रहण भी करना चाहिए। किन्तु यदि दैनिक खाद्य पदार्थों में जल धारण करने वाले खाद्य पदार्थों की अधिकता हो तो उसी अनुपात से जल भी कम व अधिक पीना युक्तिसंगत है।

पाश्चात्य विख्यात प्राकृतिक चिकित्सक प्रिसनिज ने अपने बहुत से रोगियों को दिन रात में २० से ४० गिलास तक पानी पिलाकर इस बात की परीक्षा की थी कि अधिक पानी पीने से लाभ होता है या हानि, जिसके परिणामस्वरूप यह बात मालूम हुई कि इतनी अधिक मात्रा में पानी पीना शरीर के लिए अनावश्यक एवं भारस्वरूप होता है, जिसका बहुत कम अंश शरीर को लाभ पहुँचाता है, शेष सब शरीर के

उत्सर्ग मार्गों द्वारा व्यर्थ बाहर निकल जाता है। साधारणतः प्रतिदिन ४ से १० गिलास पानी पीना एक मनुष्य के लिए काफी होना चाहिए जिसमें से ४ गिलास पानी जाड़ों के लिए एवं १० गिलास ग्रीष्म ऋतु के लिए समझना चाहिए। हाँ जलवायु एवं अन्य परिस्थितियों के अनुसार इस नियम में व्यतिक्रम भी हो सकता है। जैसे एक दफ्तर का बाबू जिसका काम पंखे के नीचे बैठकर केवल लिखना होता है, प्रतिदिन ४ या ५ गिलास से अधिक पानी नहीं पी सकता है। परन्तु एक मजदूर जो जेठ बैसाख की कड़ी धूप में बाहर काम करते हुए लोहू पसीना एक करता है यदि एक दिन में २५ या ३० गिलास या इससे भी अधिक पानी पी जाय तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है ?

जल-चिकित्सा (WATER-CURE)

सचमुच यह एक विडम्बना और आश्चर्य की बात है कि विकास के इस युग में साधारण पानी की जादू भरी और रामबाण—रोगनिवारण-शक्ति से बहुत कम लोग परिचित हैं, और संसार के अधिकांश लोग इसके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानते। प्रायः सभी लोग पानी का उपयोग प्यास बुझाने के लिए, नहाने के लिए

बरतन व कपड़ा धोने के लिए, जल-बिहार करने के लिए, तथा खेत एवं वाटिका के पेड़-पौधों को सींचने के लिए ही करते हैं, पर उन्हें यह बात नहीं मालूम है कि पानी में रोगों को दूर करने की बहुत बड़ी एवं अमोघ शक्ति भी है।

गोपनीय नुस्खों की खोज में व्यस्त आधुनिक औषधि-चिकित्सकों ने इस मामूली पानी को औषधि वर्ग में सम्मिलित ही नहीं किया। इसकी पूरी तौर से उपेक्षा ही कर दी, जिसमें रोग-निवारण की अद्भुत शक्ति भरी पड़ी है।

यह एक विचित्र बात है कि मनुष्य पानी से इतना अधिक परिचित होते हुए भी पानी की रोगनाशक शक्ति से अनभिज्ञ बना हुआ है।

जल-चिकित्सा का संक्षिप्त इतिहास

जल द्वारा रोगों का इलाज संसार में जल की उत्पत्ति-काल से ही होता आ रहा है, अर्थात् जल-चिकित्सा-प्रणाली संसार में प्रचलित सभी प्रणालियों से पुरानी है। वेदों में, जो संसार के सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं, वैदिक काल में जल-चिकित्सा के प्रचलित रहने के कितने ही प्रमाण मिलते हैं।

आयुर्वेद में आया है :—

"उत्तानसुप्तस्य गभीरताम्र-
कांसादिपात्रे निहिते च नाभौ ।
शीताम्बुधारा बहुला पतन्ती
निहन्ति दाहं त्वरितं ज्वरञ्च ।।"

अर्थात्, पित्त-ज्वर के रोगी को चित्त लेटाकर उसके पेड़ू पर ताँबे या काँसे का एक गहरा बर्तन रखें और ऊपर से ठंढे पानी की मोटी धार गिरावें। यह चिकित्सा पित्त-ज्वर को तुरन्त शान्त करती है।

इसी प्रकार यजुर्वेद में 'यन्त्रवारि' यानी फुहारे, वर्षा के जल, वस्ति (एनिमा), स्वेद (भाप-नहान) तथा आर्द्रवस्त्रावगुण्ठन (वेटशीट-पैक) आदि का रोगों में प्रयोग किये जाने का उल्लेख है।

इतिहास से यह बात प्रकाश में आई है कि प्राचीन चिकित्सा-साहित्य में जल के प्रयोग का बार-बार उल्लेख हुआ है। इससे जल-चिकित्सा की प्राचीनता स्वयं सिद्ध है।

डॉक्टर जे० एच० केलाग ने, जो 'जल-चिकित्सा' के एक संसार प्रसिद्ध विशेषज्ञ हो गुजरे हैं, लिखा है कि प्राचीन असीरिया एवं मिस्र निवासियों की आदतों एवं रीति रिवाजों के विवरण जो आधुनिक अन्वेषणों

में मालूम हुए हैं, उनसे भी यही तथ्य प्रतिपादित होता है कि प्राचीन काल में इन देशों में जल-चिकित्सा प्रचलित थी।

प्राचीनकाल में हिब्रू, ग्रीक, तथा परशियन भी रोग निवारण के लिये जल का प्रयोग करते थे, और आज भी उनके वंशज रोग-निवारण के लिये जल का पूर्ववत् व्यवहार करते हैं।

महात्मा ईसा के कई शताब्दी पूर्व के एक चीनी विवरण से ज्ञात होता है कि एक तत्कालीन चिकित्सक ने एक चीनी स्त्री के किसी रोग को दूर करने के लिये उस पर एक सौ बार बर्फ का जल डालने का निदान किया था। वह निदान आजकल की ठंढी पट्टी से मिलता जुलता है।

टोकियो मेडिकल जर्नल १८८१ के अंक में लिखा है कि जापान में ठंढे पानी से स्नान का प्रचलन प्रायः आठ सौ वर्षों से है, विशेषकर इस देश में परम्परा से चले आते ग्रामीण चिकित्सकों ने जल का उपयोग रोग-निवारण के लिए किया है और ठंढे जल के स्नान के चिकित्सा सम्बन्धी उपयोग के विषय में प्रायः तीन सौ वर्ष पुराना एक निबन्ध डॉ० नागाकामी ने प्रकाशित किया था, जिसमें तीव्र उन्माद, हिस्टीरिया, दमा और

बाल-मूर्च्छा कमेड़ा की बीमारियों में ठंढे जल के स्नान को लाभदायक बताया गया है।

यूनान का प्रसिद्ध चिकित्सक हिपोक्रेट्स जिसको आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान का जनक कहा जाता है, ठंढे और गरम जल के महत्त्व से पूर्णतया अवगत था। वह जल का प्रयोग ज्वर, फोड़े, रक्तस्राव आदि में करता था। आज लगभग दो हजार वर्ष बाद भी उसके किये हुए निदान उतने ही उपयोगी है जितने तब थे।

रोमन-काल में स्नान का बहुत ही सांस्कृतिक महत्त्व था। रोमन-सम्राटों ने ऐसे स्नान-घर बनवाये थे जो सर्वसाधारण के लिये सुलभ थे और जिसमें हजारों व्यक्ति एक साथ स्नान कर सकते थे। रोम और पाम्पेई में जो प्राचीन स्नानगारों के खण्डहर उपलब्ध हुए हैं, उनमें स्नान के लिये विभिन्न उपकरणों को देख कर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है कि उस प्राचीन युग में भी जल चिकित्सा-प्रणाली कितनी प्रौढ़ता को पहुँची थी। उसमें गर्म पानी, ठंढे पानी, तथा वाष्प-स्नान के लिये समुचित व्यवस्था थी।

यूनानी चिकित्सक स्क्लैयीएड्स ने जल को प्राय सभी रूपों में काम में लिया है, जैसे, गरम और ठं

पानी में स्नान, एनिमा, पट्टियाँ आदि। उसके एक शिष्य आगस्टस मूसा ने सम्राट आगस्टस के जीर्ण सर्दी-जुकाम को ठंढे जल से स्नान द्वारा ठीक कर दिया था और इस तरह उसने काफी प्रसिद्धि प्राप्त की। इस काम के पुरस्कार-स्वरूप सम्राट ने उसकी प्रस्तर मूर्ति को स्कूलेपियस के मन्दिर में स्थापित करने का आदेश दिया। बाद में जल-चिकित्सा के इस महान उपासक ने महाकवि होट्स की भी सफल चिकित्सा की।

प्लीनी के मतानुसार रोमनों में प्रायः पौन शताब्दी तक स्नान का चिकित्सा में एकान्त महत्त्व था।

मध्ययुग में अरब चिकित्सक जो अपने समय के काफी बुद्धिमान व्यक्ति थे रोग-निवारण के लिये स्नान के बहुत हिमायती थे, विशेषकर ज्वर में। उन्होंने चेचक और शीतला का जो निदान निर्धारित किया था, उसमें आज भी बहुत ही कम परिवर्तन हुआ है। हाजेस ने ज्वर की तीव्रता को कम करने के लिये आधे घण्टे के भीतर ही प्रायः दो-तीन गिलास बर्फ के जल को पीने की सलाह दी है। एवीसेना ने कब्ज को दूर करने के लिये ठंढे जल के प्रयोग का सुझाव दिया है।

लायन्स के श्री बारा ने १६७५ ई० में 'बर्फ और

शीत' नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की जिसमें उसने शीत के आरोग्यदायक गुणों पर प्रकाश डाला है। उसने अपनी पुस्तिका में इस बात की ओर ध्यान आकर्षित कराया है कि हर्ब लोग बर्फ के पिघले जल को एवं पानी को घास से ढक कर और वायु के स्पर्श से ठंढा करके रोग-निवारण के लिये उपयोग में लाते थे। उसने शीतल जल को ज्वर दूर करने का एक अचूक साधन बताया, और मुहाँसे, झाईं, महामारी, छूत के रोग, फोड़ा-फुन्सी, दस्त, प्लुरिसी, प्लेग, गले की सूजन तथा कब्ज के लिये भी।

एक इटली निवासी चिकित्सक लोजानी ने १८-वीं शताब्दी के आरम्भ में ही एक निबन्ध लिखा, जिसमें ज्वर को दूर करने के लिये जल के आन्तरिक प्रयोग की सलाह दी है। उसी युग में फ्रा बर्नारडिनो ने बर्फ के जल को कब्ज, स्नायु-दौर्बल्य, रक्तचाप आदि रोगों में प्रयोग करके जल को 'डाक्टर जल' की संज्ञा दी। उसने अपने रोगियों को दिन भर में ३ से ६ गिलास तक बर्फ के जल को पीने की सलाह दी।

नीचे मेथोडिस्ट चर्च के संस्थापक जॉन वेस्ली, एम० ए० की सन् १७४७ ई० में प्रकाशित पुस्तिका 'आदियुगीन चिकित्सक' से कुछ उद्धरण दिये जाते हैं

जिनसे ज्ञात होगा कि उस जमाने में रोगों को दूर करने एवं स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिये जल का उपयोग लोगों को भली भाँति ज्ञात था। वेसली ने अपनी उपर्युक्त पुस्तिका में उन्हीं रोगों की जल चिकित्सा लिखी है जो उस समय प्रचलित थे:—

ज्वर में—कँपकँपी के तुरन्त बाद ठंढे जल से स्नान करें। आज भी जर्मनी और फ्रांस में यह प्रयोग किया जाता है। या कँपकँपी के बाद एक पाव ठंढा जल पीकर बिस्तर पर लेट जायँ और शरीर को ढँक लें जिससे पसीना निकल सके।

तिजारी ज्वर में—जब ज्वर न रहे तो बहुत हल्का भोजन लें या उपवास करें, या ठंढे पानी को का काम में लावें। लेकिन अत्यन्त वृद्ध और कमजोर रोगियों के लिये यह प्रयोग वर्जित है। किन्तु ऐसी स्थिति में ठंढे पानी से केवल दो या तीन मिनट तक ही स्नान करें या प्रारम्भ में इससे भी कम। खाना खाने या पेट भरे रहने के बाद स्नान न करें। इस तरह जब ९ या १० बार हो जाय तो सप्ताह में दो या तीन बार स्नान करें। लकवा और सूखा रोग में ठंढे पानी से स्नान के बाद बिस्तर पर शरीर को ढँक कर लेट रहें और पसीना निकलने दें।

कँपकँपी में—जूड़ी के आरम्भ होने के पहले बिस्तर पर पड़ रहें और नींबू की शिकंजबी पीकर पसीना लावें। इस तरह तीन बार करने से रोग दूर हो जायगा। यदि फिर भी रोग दूर न हो तो कँपकँपी आरम्भ होते ही ठंढे पानी से स्नान कर लें। सन् १८६८ ई० के आसपास पुस्तिका के लेखक ने इस प्रयोग को मध्य अमेरिका की साधारण जनता को अपनाते स्वयं देखा था। जिससे रोग दूर हो जाता था।

मूर्च्छा-रोग में—इसे दूर करने के लिये ठंढे पानी से स्नान करें और केवल पानी पीकर रहें।

दमा में—रोज सवेरे एक गिलास जल पीवें। उसके तुरंत बाद सिर को ठंढे पानी से धो लें, और १५ दिन में एक बार खूब ठंढे पानी से स्नान करें। तात्कालिक लाभ के लिये एक गिलास गरम पानी पीकर वमन करें।

सूखा दमा में—सप्ताह में तीन दिन खूब ठंढे पानी से स्नान करें।

चोट लगने या कुचल जाने पर, सूजन से बचने के लिये—किसी कपड़े की ५-६ तह करके ठंढे पानी

में भिगोकर और कसकर निचोड़ लें, तत्पश्चात् उसे चोट लगे स्थान पर रखें। जब शरीर की गर्मी से कपड़ा गरम हो जाय तो कपड़े को फिर ठंढे पानी में भिगो और निचोड़ कर उस स्थान पर रखें। इस तरह बार-बार करें।

चोट लगने या कुचल जाने पर आ गयी सूजन को दूर करने के लिये—खूब गरम पानी में कपड़ा भिगोकर और निचोड़कर सुबह-शाम आध घंटे सूजे स्थान को सेंकें।

आग से या गरम पानी आदि से जल जाने पर—शरीर के जले हुए भाग को खूब ठंढे पानी में डुबो दें और एक घंटे तक पानी में डुबोये रहें। यदि फिर भी लाभ न हो तो ४-५ घंटे तक पानी में डुबोये रहें।

बच्चों को सूखा रोग, दुबलापन तथा कमजोरी से बचाने के लिये—उनके शरीर को रोज कुछ देर तक ठंढे पानी के टब में रखें जब तक कि वे ९-१० वर्ष की उम्र के नहीं हो जाते।

काली खाँसी में—रोज ठंढे पानी से स्नान करावें।

हैजे में—यदि रोगी शरीर से कमजोर न हो तो २-३ गिलास ठंढा पानी मिलावें और यदि कमजोर हो तो गरम पानी पिलावें।

सर्दी लगने पर—एक गिलास ठंढा पानी पीकर बिस्तर पर लेट जावें।

पेट के दर्द में—एक गिलास खूब ठंढा पानी पीवें, या एक गिलास गरम पानी पी लें, अथवा गरम पानी की थैली पेट पर रखें, या १५ मिनट तक पैरों को गरम पानी में डुबोएँ।

हिस्टीरिया में—ठंढे पानी से स्नान करें। महीने में २२ बार ठंढे पानी से स्नान करने से हिस्टीरिया के समय के दर्द या हिस्टीरिया जनित कँपकँपी से मुक्ति मिल जाती है।

पुराने सिर-दर्द में—प्रायः १५-२० दिनों तक सोने के पहले अपने दोनों पैरों को गरम पानी में १५ मिनट तक डुबोएँ।

धूप या लू लग जाने से सिर दर्द—ठंढे पानी में कपड़ा भिगोकर और खूब निचोड़कर एक घंटे तक ललाट पर रखें।

बिजली गिरने से बेहोश होने या दम घुटने पर—रोगी को तुरन्त खूब ठंढे जल में लिटा दें।

उन्माद में—एक सूती चादर को खूब ठंढे पानी में भिगोकर और निचोड़कर रोगी के शरीर पर लपेट दें। या रोगी के सिर पर ठंढे पानी की पतली धार डालें।

गठिया में—रोगी को ठंढे पानी से स्नान कराकर उसके शरीर को खूब रगड़ें और पसीना निकलने दें।

बच्चे के सूखा रोग में—बच्चे को रोज खूब ठंढे जल से स्नान करावें।

साइटिका-रोग में—ठंढे पानी से खूब रगड़-रगड़ कर स्नान करावें और पसीना निकाले। यह क्रिया दिन में दो बार करें। या सबेरे या तीसरे पहर ठंढा पानी पिलायें।

पथरी-रोग में—रात के भोजन के ठीक बाद रोज एक गिलास गरम पानी पीवें।

जोड़ों की सूजन में—उस स्थान पर पहले दिन गरम पानी की धार छोड़ें और दूसरे दिन ठंढे पानी की। या पहले दिन ठंढे पानी की धार छोड़ें और दूसरे दिन गरम पानी की। इसके लिये कुछ दिनों तक ठंढे पानी से स्नान करने के ठीक पहले गरम पानी से स्नान करें।

रोगों में उपर्युक्त जल के प्रयोग इतने उपयोगी और बुद्धिमत्ता पूर्ण हैं कि जल-चिकित्सा पद्धति के सर्वाङ्गीण अन्वेषण के बाद भी आज तक उनमें कदाचित् ही परिवर्तन की आवश्यकता प्रतीत हुई है।

इंग्लैण्ड में सर जान फ्लोयर ने सन् १६९७ ई०में ठंढे पानी के स्नान का इतिहास प्रकाशित किया। उसमें उसने निर्देशित किया है कि रोगी के शरीर पर भीगे पानी में कपड़े लपेटकर उसके ऊपर कम्बल ढँककर पसीना निकाल देना चाहिए, और उसके बाद ठंढे जल से स्नान कर लेना चाहिए। इसी पद्धति का अनुसरण प्रायः एक शताब्दी पश्चात् प्रियेजिन्त ने अपनाया और आधुनिक युग में इसी को ठंढी पट्टी कहते हैं।

फ्लोयर ने सत्रहवीं शताब्दी के अंत में इंग्लैण्ड के 'लिएफील्ड' नामक स्थान में एक जल-चिकित्सा-गृह की स्थापना की; उसमें मुख्य रूप से दो कमरे थे, जिनमें से एक कमरा तो गरम पानी से स्नान कराने और सूखी पट्टी का स्नान कराने के लिये था, और दूसरे कमरे में ठंढे पानी से स्नान की व्यवस्था थी।

जान हेनकाक ने 'फेब्रिफुगम मेगनम' नाम की एक पुस्तक सन् १७२३ ई० में प्रकाशित की, जिसमें उसने चेचक, छोटी माता, शीतला और ज्वर में ठंढे पानी के पीने का महत्त्व प्रतिपादित किया है। उसने कम्बल में रोगी को लपेटकर पर्याप्त मात्रा में पानी पीने और उसके द्वारा पसीना लाकर तिजारी ज्वर को ठीक किया।

१८वीं शताब्दी के प्रसिद्ध अंग्रेज सर जान कार्डिन को ईरान में यात्रा करते समय तीव्र ज्वर हो गया। उसके फ्रान्सीसी चिकित्सक साथी ने उसका रोग असाध्य समझा और इलाज के लिये एक स्थानीय चिकित्सक को बुलाया। उसने सर जान को बर्फ से ठंढा किया हुआ जल काफी मात्रा में पिलाया, पाँच दिनों तक उपवास कराया, पानी से भीगी एक चटाई पर लिटाकर रखा, और उसके शरीर की त्वचा को पानी से लगाकर गीला रखा। बीच-बीच में रोगी के सिर पर पानी की धार भी डाली जाती थी। इस तरह केवल दो दिनों में ही ज्वर उतर गया।

१८वीं शताब्दी के अन्तिम काल में दो अंग्रेज चिकित्सक क्युरी और जैक्सन ने ज्वर में पानी के प्रयोग का बहुत ही उपयोगी, महत्त्वपूर्ण एवं वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया और परिणाम स्वरूप उसी काल से इंग्लैण्ड में लोगों का ध्यान चिकित्सा के रूप में पानी की तरफ आकर्षित हुआ। उन चिकित्सकों ने बताया कि ठंढे पानी से (देह पोछने के बजाय ठंढे पानी से स्नान को प्रमुखता देनी चाहिए। क्योंकि ठंढे पानी से) स्नान कर लेने से स्फूर्तिमय विश्राम मिलता है और इस पद्धति से शक्ति व चेतना प्राप्त होती है।

क्युरी के काल के पहले क्राफोर्ड ने सन् १७८१ ई० में ठंढे पानी से स्नान का मनोवैज्ञानिक प्रभाव एवं प्राणवायु सम्बन्धी महत्त्व पर प्रकाश डाला था।

उसके बाद सन् १७९० ई० में साइलेसिया के कृषक विन्सेन्ट प्रिसनिज के कार्यों से जनसाधारण का ध्यान जलचिकित्सा की ओर आकृष्ट हुआ। साइलेसिया, आस्ट्रिया में है। आज से लगभग १०० वष पहले वहाँ प्रिसनिज का जन्म हुआ। इसने सर्व प्रथम हिरनी, कुत्ता, तथा अन्य पशुओं, तत्पश्चात् स्वयं अपने पर जल का प्रयोग करके जल की रोगनिवारक-शक्ति के प्रभाव को जाना। प्रिसनिज बिना किसी हिचक के जल का बाहर-भीतर, दोनों रूपों में प्रयोग करते थे। वह पहाड़ी से बहते हुए झरने के बर्फ जैसे ठंढे पानी द्वारा ही लोगों का इलाज करते थे। आज विश्व के सभी जल चिकित्सक प्रिसनिज के अनुयायी हैं।

स्क्राथ, प्रिसनिज के समकालीन ही दूसरे आस्ट्रियावासी जलचिकित्सक थे, जिन्होंने जल के रोगनाशक गुणों पर अच्छा प्रकाश डाला।

अमेरिका में प्रारम्भ में फिलाडेल्फिया के बेन्जामिन रश ने ठंढे पानी से गठिया, चेचक शीतला और पीला ज्वर तथा अन्य बीमारियों का सफलतापूर्वक

इलाज किया। सन् १७९४ ई० में रश ने ज्वर की अवस्था में बर्फ के टुकड़ों को एक थैले में रखकर पर्याप्त लाभ की संभावना प्रगट की।

डाक्टर वाड और डाक्टर होसाक ने न्युयार्क शहर के अस्पतालों में सन् १७९५ ई० में ज्वर में जल का उपयोग आरम्भ किया।

आरम्भ काल में ठंढे पानी के स्नान का मनोवैज्ञानिक एवं शारीरिक महत्त्व जिन लोगों ने प्रतिपादित किया उनमें वर्जिनिया के हेनरी विल्सन लाकेट के प्रयोगों का महत्वपूर्ण स्थान है। उसके इन प्रयोगों का प्रकाशन सन् १८०१ ई० में हुआ।

बाद में अमेरिका में जल-चिकित्सा का काफी प्रचार हुआ। जल-चिकित्सा के लिये वहाँ विभिन्न जगहों पर प्राकृतिक चिकित्सा-संस्थान कायम हुए और फिलाडेल्फिया के डाक्टर जान बेल ने प्राकृतिक चिकित्सा का काफी प्रचार किया और उन्हीं का लिखा अंग्रेजी भाषा में निबन्ध 'स्नान' हाल तक सर्वश्रेष्ठ कृति के रूप में स्वीकार किया जाता था।

बेवेरिया निवासी सैब्सियन निप, जो पोप था, जलचिकित्सा का बड़ा भारी प्रवर्तक था। अपने जमाने में उसने इस चिकित्सा का बहुत प्रचार किया।

इस चिकित्सा के सम्बन्ध में उसने कितने ही नये आविष्कार किये। जल चिकित्सा का उसका एक अपना अस्पताल था जिसका संचालन उसने ४५ वर्ष तक किया। आज भी जर्मनी में उसके नाम से बहुत सी जल-चिकित्सा सम्बन्धी संस्थाएँ चालू हैं, जिनके सदस्यों की संख्या ५०००० से ऊपर कही जाती है। जल चिकित्सा पर निप ने एक बहुत उपयोगी पुस्तक भी लिखी है, जिसका नाम है 'माई वाटर क्योर' जो प्राकृतिक चिकित्सकों का मार्गदर्शन आज भी कर रही है।

लूईकूने तीसरा जल-चिकित्सा का प्रचारक था जिसके जमाने में यह चिकित्सा प्रणाली उन्नति के शिखर पर पहुँच गई। जल-चिकित्सा पर इसने कई अच्छी पुस्तकें लिखी हैं जिसमें 'रोगों की नई चिकित्सा' संसार में अधिक प्रसिद्ध है।

इस विख्यात पुस्तक की अब तक ६०-७० आवृत्तियाँ हो चुकी हैं। संसार की लगभग सभी भाषाओं में इस पुस्तक का अनुवाद भी हुआ है और उनकी भी कई आवृत्तियाँ हो चुकी हैं।

कूने जर्मनी के लिपजिग नगर में पैदा हुए थे, एक जोलाहे के घर। इनके माँ-बाप की मृत्यु एलोपैथी

के डाक्टरों के हाथों हुई थी। जब यह २० वर्ष के थे तो यह भी बहुत बीमार पड़े और जल-चिकित्सा द्वारा अपने को स्वयं ठीक कर लिया। सन् १८८३ में इन्होंने लिपजिग में अपना निज का एक जल-चिकित्सालय खोला और उसके द्वारा जल-चिकित्सा-विज्ञान का खूब प्रचार किया।

जल द्वारा रोगों का इलाज

जल-चिकित्सा ही रोग-निवारण की एक ऐसी आसान तथा सबसे सस्ती चिकित्सा-पद्धति है जो हर समय, हर जगह, किसी भी रोग के होने पर प्राप्त हो सकती है। उचित और विवेकपूर्ण जलोपचार से हर प्रकार के नये और पुराने रोग आश्चर्यजनक रूप से ठीक हो जाते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा के सभी साधनों में सबसे अधिक गुणकारी तथा शक्तिशाली साधन जल ही है जिसका व्यवहार अति सरल है। क्योंकि जल आसानी से तरल से ठोस और तरल एवं ठोस से भाप बन जाता है। कोई भी ऐसा रोग नहीं है जिसमें किसी न किसी रूप में जल का उपयोग नहीं किया जा सकता और उससे लाभ नहीं उठाया जा सकता।

जल-चिकित्सा में केवल स्नानों और पट्टियों का सहारा लिया जाता है। इसमें निम्नलिखित तापमान का जल व्यवहार में लाया जाता है :—

१—बहुत ठंढा ... ३२ से ५० डिग्री फा० हा० तक
२—ठंढा ... ५० से ६५ ,, ,, ,, ,,
३—शीतल ... ६५ से ८० ,, ,, ,, ,,
४—गुनगुना ... ८२ से ९० ,, ,, ,, ,,
५—हल्का गरम ... ९२ से ९८ ,, ,, ,, ,,
६—गरम ... ९८ से १०४ ,, ,, ,, ,,
७—अधिक गरम... १०४ से १२० ,, ,, ,, ,,
८—बहुत अधिक गरम... १२० से आगे ,, ,, ,, ,,

जलोपचार आरम्भ करने के पहले रोगी की जीवन शक्ति, उम्र, रोग कितना पुराना है, मौसम कैसा है, रोगी जवान है या बूढ़ा आदि बातों पर विचार कर लेना जरूरी है। साथ ही जलोपचार के साथ-साथ आहार-सुधार, संयम, विश्राम, एनिमा आदि द्वारा पेट की सफाई आदि भी जरूरी है। इन सब के साथ मिलकर जल-चिकित्सा किसी भी रोग को ठीक करने की पूरी क्षमता रखती है।

सभी रोगों में उपकारी कटिस्नान—यह स्नान पेट को साफ करने और कब्ज को दूर करने के साथ-साथ

जिगर, तिल्ली और अँतड़ियों के रस-स्राव को भी बढ़ाता है, जिससे रोगी की पाचन-शक्ति में असाधारण वृद्धि हो जाती है। शारीरिक स्नायुमण्डल द्वारा इस स्नान का प्रभाव समस्त शरीर पर पड़ता है जिससे प्रायः सभी रोगों में इससे लाभ होता है। संक्षेप में हम डाक्टर लूई कूने के शब्दों में कह सकते हैं कि कोई भी ऐसा रोग नहीं है जिसमें कटिस्नान लाभ नहीं पहुँचाता। विधि यह है :—

तकियादार टब में या छिछली बड़ी नाँद में ठंढा पानी इतना भरना चाहिए कि उसमें बैठने पर पानी नाभि तक आ जाय। पैर टब के बाहर किसी छोटी चौकी या ईंट पर रखे जा सकते हैं। रोगी की पीठ टब के पिछले भाग से लगी रहती है। टब में बैठने के बाद किसी खुरदुरे कपड़े या तौलिया से पेड़ को दाहिनी ओर से बाईं ओर और बाईं ओर से दाहिनी ओर हल्के हल्के पर जल्दी जल्दी मलते हैं। सर्दियों में टब में बैठते वक्त घुटनों के नीचे टाँगों और नाभि के ऊपर के भाग को कपड़े से ढँके रखना लाभ-दायक है।

यह स्नान ५ से २० मिनट तक लिया जा सकता है। या आवश्यकतानुसार इससे भी अधिक समय तक

लिया जा सकता है। स्नान थोड़े समय से आरम्भ करना चाहिए और रोज एक-एक मिनट बढ़ाकर निर्दिष्ट समय तक पहुँचना चाहिए।

स्नान के बाद भीगे हुए स्थान को सूखे कपड़े से पोंछ कर तथा तुरन्त कपड़े पहन कर किसी विधि से शरीर में गर्माहट लानी चाहिए। इसके लिये कुछ देर तक टहलना या कोई हल्की कसरत करना ठीक रहता है।

इस स्नान के लेने के एक घंटे बाद तथा २-३ घंटे पहले कुछ नहीं खाना चाहिए।

कमजोर व्यक्तियों एवं बच्चों के लिये यह स्नान २ से ५ मिनट तक लेना काफी है।

कॉटस्नान का पानी शरीर के तापमान से ३०-४० डिग्री कम होना चाहिए। पानी के तापमान को घटाने के लिये बर्फ का मिश्रण भी पानी में अन्दाज से किया जा सकता है। किन्तु मिट्टी के घड़े में रखा ठंढा जल सबसे अच्छा रहता है।

हर प्रकार के स्नायविक रोगों एवं स्त्री-रोगों आदि के लिये मेहन-स्नान—कमजोर रोगियों के लिये यह स्नान विशेष फलप्रद है। आधे घंटे तक मेहनस्नान करने से भयानक श्वास-रोग भी कम पड़ जाता है।

दमा, न्युमोनिया, डिप्थीरिया और कैंसर आदि रोगों में भयंकर श्वासकष्ट इस स्नान से बड़ी जल्दी बंद हो जाता है। मानसिक विकार, अनिद्रा रोग, स्नायु-शूल, साइटिका, उन्माद तथा हिस्टीरिया आदि रोगों की यह स्नान एक ही दवा है।

मेहन-स्नान इस तरह करें :—

कटिस्नान वाले टब में ही मेहन-स्नान भी किया जा सकता है। टब के बीचोबीच एक छोटी चौकी रखनी चाहिए। टब में इतना ठंढा पानी भरना चाहिए कि वह चौकी के बराबर आ जावे। चौकी पर नंगे बदन बैठकर पैरों को टब के बाहर अगल-बगल रखना चाहिए। अब बैठे बैठे एक कपड़े के टुकड़े को टब के पानी में भिगो-भिगो कर उससे मूत्रेन्द्रिय के घूँघट को बाएँ हाथ की अँगुलियों के बीच पकड़े रहकर उसकी चमड़ी के अग्रभाग को दाहिने हाथ में लिए कपड़े से धीरे धीरे और हल्के हल्के मलना चाहिए। यह क्रिया १० से २० मिनट तक की जा सकती है। इस स्नान के लिये स्त्रियों को ऊपरी भगोष्ठ के दोनों तरफ के ओठों को धीरे-धीरे धोना चाहिए।

इस स्नान के बाद भी कटिस्नान की तरह ही शरीर को गरम कर लेना चाहिए।

जिन पुरुषों के लिंग के घूँघट की यह चमड़ी नहीं रहती, जैसे मुसलमानों में, उन्हें अण्डकोषों और गुदा के बीचवाले सीवन को मलना चाहिए।

मलपूरित शरीर को मलरहित करने के लिये सर्वोत्तम प्रणाली—समूचे शरीर की भीगी चादर की लपेट—ज्वर, पीलिया, पुराना मलेरिया, चेचक, मोटापा, सर्व प्रकार के स्नायविक रोग, अनिद्रा-रोग, टायफाइड, हृदय रोग, तथा बहुमूत्र आदि रोगों में यह प्रयोग जादू का काम करता है। लपेट इस प्रकार लगाइए :—

किसी तख्त पर ३-४ कम्मल पूरे पूरे बिछाएँ। कम्मल के ऊपर ठंढे पानी में भिगोई और निचोड़ी एक चादर फैला दीजिए। पीठ की जगह एक भीगा और निचोड़ा कपड़े का टुकड़ा रख दीजिए। कमर के लँगोट या वस्त्र को भी गीला कर दीजिए। तत्पश्चात् चादर से सिर को बाहर रखते हुए रोगी को उस चादर पर चित लेटा दीजिए। रोगी के हाथों को बाहर रखकर पहले उस छोटे से भीगे कपड़े को जो छाती पर लपेटने के लिये रखा था, कसकर लपेट दीजिए। उसके बाद चादर को इस तरह शरीर के इधर-उधर लपेटें कि शरीर का हर हिस्सा उससे

लिपट जाय। चादर की लपेट ढीली न रहे बल्कि शरीर की चमड़ी से चिपकी रहे। बाद में कम्मलों को ऊपर से एक-एक करके लपेट दीजिए।

चादर लपेटने के पहले रोगी का चेहरा और सिर ठंढे पानी से भलीभाँति धो देना चाहिए और एक गिलास गरम पानी उसे पिला देना चाहिए। चादर की इस लपेट के समय एक ठंढा भीगा गमछा सिर पर रख देना चाहिए और उसे बदलते रहना चाहिए।

४५ मिनट से १ घंटा तक इस लपेट को रखा जा सकता है। जब शरीर से पसीना बह निकले, या रोगी बेचैनी अनुभव करने लगे तो लपेट को खोल दीजिए। लपेट के वस्त्रों को एक-एक करके आहिस्ते-आहिस्ते खोलना चाहिए। फिर समशीतोष्ण जल में गमछा भिगोकर उससे रोगी के बदन को पोंछ कर साफ करना चाहिए। बाद में सूखी मालिश आदि करके उसके शरीर को गरम कर देना चाहिए।

सर्व व्याधि नाशक—भाप-नहान—इस स्नान से लगभग सभी रोगों में लाभ होता है। अजीर्ण रोगों में यह स्नान नवजीवन ला देता है। वात-रोगों की तो यह एक रामबाण औषधि है। इसके अलावा मूत्र-

ग्रन्थि की सूजन, चर्मरोगों, मूत्रविकार, पथरी, गर्मी-सुजाक, मोटापा, दमा, हड्डी के रोग, यकृत व पित्ताशय के रोग, तथा हर प्रकार के ट्युमर आदि में यह स्नान बड़ा लाभ करता है।

इस स्नान के लिये बेंत की बुनी बेंच या मामूली मूंज की बुनी नंगी खाट पर नंगा होकर लेटना चाहिए और ऊपर से शरीर पर एक कम्मल डाल लेना चाहिए। खाट के नीचे के हिस्से को कम्मल आदि से घेर कर ऐसा इन्तिजाम करना चाहिए कि खाट के नीचे भाप का बर्तन रखने पर भाप इधर उधर न जाकर सीध रोगी के शरीर पर लगे। अब ४ ढक्कन दार पतीलियों में पानी उबालें। जब भाप निकलने लगे तो उठाकर खाट के नीचे ले जाना चाहिए, और एक को पैरों के नीचे तथा दूसरी को पीठ के नीचे रखकर उनके ढक्कन धीरे धीरे खोलना चाहिए ताकि शरीर में भाप लगे। भाप कम हो जाने पर पहली दो पतीलियों को दूसरी भाप निकलती दो पतीलियों से बदल देना चाहिए। इस स्नान के पहले सिर, गर्दन, व चेहरे को ठंढे पानी से अच्छी तरह धो लेना चाहिए। उसके बाद एक गिलास गरम पानी पीकर भाप लेने के लिये लेटना चाहिए। सिर व चेहरे को

कम्मल के बाहर रखना चाहिए तथा खोपड़ी पर ठंढे पानी से तर एक गमछा रखना चाहिए और उसे तर करते रहना चाहिए। उसी वक्त एक दूसरी ठंढे जल से भीगी छोटी तौलिया हृदय पर रखनी चाहिए।

१० से २० मिनट तक यह स्नान यथेष्ट होता है। स्नान के बाद समूचे शरीर के पसीने को कम्मल के अन्दर ही भीगी तौलिया से पोंछना चाहिए। सबके अंत में १० मिनट का कटिस्नान लेना चाहिए।

पावों का गरम नहान —आंतों, मूत्राशय, तथा पेड़ू के रोगों को शान्त करता है। मासिक की गड़बड़ी में इस स्नान से बड़ा लाभ होता है। सिर-दर्द, पैर-दर्द, पावों का ठंढा रहना, सर्दी-जुकाम, तथा वात रोगों में यह नहान बड़ा गुणकारी है। पावों का गरम नहान इस प्रकार लीजिए :—

किसी स्टूल या कुर्सी पर बैठकर पैरों को गरम पानी की बाल्टी में रखना चाहिए। बाल्टी में पानी इतना हो कि पानी टखनों से कुछ ऊपर और घुटनों से एक बीता नीचे रहे। पानी हल्का गरम हो। पानी ज्यों ज्यों ठंढा होता जाय बाल्टी में अधिक गरम

पानी थोड़ा थोड़ा मिलाते रहना चाहिए। स्टूल पर बैठने के बाद एक कम्मल इस प्रकार ओढ़ना चाहिए कि सारा शरीर ढका रहे और बाल्टी भी कम्मल के अन्दर आ जाय। सिर पर ठंढे पानी से भीगा तौलिया रखना चाहिए जिसे तर करते रहना चाहिए। स्नान के आरम्भ में थोड़ा गरम पानी भी पी लेना चाहिए। १० से २० मिनट तक यह स्नान लें। बाद को पैरों को ठंढे पानी से धोकर पोछ लें। पसीना आ गया हो तो सारे शरीर को जल से भीगे और निचोड़े तौलिये से पोंछ दें और कपड़े पहन लें। या पावों के इस गरम नहान के बाद १० मिनट का एक कटिस्नान ले लें। रात को सोते समय इस स्नान को लेना अधिक लाभप्रद है।

छाती और फेफड़ों के सभी रोगों को दूर करने में अद्वितीय—छाती की गीली लपेट—निमोनिया, तेज खाँसी, फेफड़ों का यक्ष्मा आदि में यह पट्टी बड़ा लाभ करती है। इसके लगाने से छाती में जमा हुआ कफ उखड़ता है, इसलिये यह पुरानी खाँसी और दमे के रोगियों के लिये अत्यन्त उपयोगी है।

अधिक कमजोर रोगी को जब यह पट्टी लगानी

हो तो पट्टी लगाने से पहले छाती पर हृदय बचा कर पहले गरम पानी से हल्की सेंक कर लेनी चाहिए, या पट्टी के भिगोने में गुनगुने पानी का प्रयोग करना चाहिए। ऐसा करने से ठंढक लगने का भय नहीं रहेगा।

फेफड़ों से खून गिरना यदि रोकना हो तो इस पट्टी को थोड़े समय तक ही छाती पर लगानी चाहिए। परन्तु यदि फेफड़ों की कैविटी, अर्थात् गह्वर भरना अभीष्ट हो, जैसा कि राजयक्ष्मा में जरूरत पड़ती है, तो इस पट्टी को छाती पर लम्बे समय तक लगानी चाहिए।

छाती की गीली लपेट इस तरह लगाइए :—

खद्दर का एक टुकड़ा इतना बड़ा लें जो छाती की चौड़ाई के बराबर चौड़ा और इतना लम्बा हो कि सीने के आगे-पीछे लिपट सके। इस कपड़े को ठंढे पानी में भिगो-निचोड़कर पूरी छाती पर पसलियों के नीचे तक ३-४ तह लपेट दें और ऊपर से सूखा ऊनी कपड़ा लपेट दें। यह पट्टी १ से ३ घंटे तक रखी जा सकती है।

पेट की समस्त बीमारियों को जड़ से दूर करने वाली कमर की गीली लपेट—यह लपेटे न केवल पेट

की ही बीमारियों में, बल्कि लगभग सभी प्रकार की पुरानी और नयी बीमारियों में लाभ करती है।

पेड़ू के ऊपर के पेट तथा पेड़ू के नीचे के अवयवों के रोगों में इस लपेट को आवश्यकतानुसार ऊपर या नीचे लगाना चाहिए। पाकस्थली और यकृत के रोगों में लपेट से इन दोनों स्थानों को ढँककर कुछ ऊपर की ओर बढ़ा देना चाहिए। औरतों के जरायु आदि के रोगों में नाभि से नीचे सारे पेड़ू पर यह लपेट लगानी चाहिए।

पाकस्थली के बढ़ जाने या झूलने लगने में, अजीर्ण में, आँतों के घाव एवं सूजन में तथा मेरुदण्ड के दर्द में यह लपेट बड़ी उपयोगी सिद्ध होती है।

कमर की गीली लपेट इस तरह लगाइए :—

आठ-नौ इंच चौड़े और आवश्यकतानुसार लम्बे एक कपड़े की पट्टी को ठंढे पानी में भिगो-निचोड़ कर नाभि के ४-५ अंगुल ऊपर से नीचे सारे पेड़ू और कमर के चारों ओर लपेट देना चाहिए। पट्टी को ३-४ बार घुमाकर लपेटना काफी होता है। वैसे सिद्धान्त यह है कि रोगी के शरीर का तापमान जितना ही अधिक हो उतनी ही अधिक बार पट्टी को कमर के चारों तरफ लपेट कर लपेट को मोटी कर देनी

चाहिए। गीली पट्टी लपेटने के बाद उसके ऊपर एक दूसरा सूखा ऊनी कपड़ा लपेटना जरूरी है, जिससे खून का दौरा न रुके और बाहर की हवा भीतर न प्रवेश कर जाय। अंत में पट्टी और ऊनी कपड़े को सेफ्टीपिन से अटका दें, या ऊपर से कोई अंगोछा लपेट कर उसमें गाँठ दे दें ताकि पट्टी अपने स्थान से सरकने न पाये।

जल-बस्ति (एनिमा)—इस प्रयोग से आँतें, बिना किसी प्रकार की उत्तेजना और जलन के स्वच्छ और शुद्ध हो जाती हैं जिसका अर्थ है समूचे शरीर का साफ और निर्मल हो जाना। इसी लिये प्रायः सभी रोगों में पहले पहल कुछ दिन एनिमा लेकर पेट को साफ कर देने से रोग का जोर ५० प्रतिशत अवश्य कम हो जाता है। एनिमा के इसी गुण से प्रभावित होकर अमेरिका के डाक्टर विलसन ने एनिमा को सब रोगों का नाशक कहा है।

एनिमा लेने की विधिः—

किसी तख्त पर उसके पैताने को सिरहाने से दो इंच ऊँचा रखकर चित लेट कर लेना चाहिए। एनिमा का बर्तन लेटने की जगह से ४ फीट की ऊँचाई से अधिक ऊँचा नहीं होना चाहिए। बर्तन में लगभग

ढाई सेर गुनगुना पानी भरना चाहिए। ८-१० बूँद कागजी नींबू का रस उस जल में मिला देना चाहिए। एनिमा के नोजल को खोलकर थोड़ा पानी निकाल देना चाहिए ताकि हवा बाहर निकल जाय। गुदा में डालने वाली नली को किसी चिकनाई से चुपड़ देना चाहिए तब उसे गुदा में धीरे धीरे प्रवेश कर पेट में पानी जाने देना चाहिए। भीतर पानी जाते समय पेड़ू को दायें से बायें मलते रहना चाहिए। जब सब पानी पेट में जा चुके तो पेड़ू को बायें से दायें मलना चाहिए, और कम से कम १५-२० मिनट पानी को पेट में रोक रखने के बाद पाखाना जाना चाहिए।

गले के ऊपर के समस्त रोगों का नाशक—जलनेति—जलनेति का अभ्यास करने से मस्तक के सारे दोष दूर हो जाते हैं। इस क्रिया के जितने लाभ लिखे जायँ, थोड़े ही होंगे। कैसा भी सिर-दर्द हो इस क्रिया से तुरन्त दूर होता है। अनिद्रा तथा अतिनिद्रा दूर होती है। बुद्धि तीव्र होती है। बालों का झड़ना तथा पकना बंद हो जाता है। नाक के तमाम रोग इसके निरन्तर अभ्यास तथा व्यवहार से अवश्य दूर होते हैं। जुकाम-नजला आदि दूर हो जाते हैं। पागलपन दूर हो जाता है। इससे नेत्र ज्योति बढ़ती है,

और नेत्र के सभी रोग दूर हो जाते हैं। कान बहना, बहरापन आदि कान के सभी रोग दूर होते हैं। इसकी विधि यह है:—

लगभग आधा सेर या तीन पाव पानी अँटने लायक कोई टोंटीदार लोटा या बर्तन लें, जिसकी टोंटी का मध्य भाग नासिका-रन्ध्र में फिट बैठता हो। उस पात्र में सहने लायक हल्का गरम पानी लें, जिसमें उतने से भी कुछ कमही सेंधा नमक मिला हुआ हो जितना दाल में मिलाते हैं। अब उकड़ूं बैठकर उस हल्के गरम नमकीन पानी के पात्र की टोटी को पहले नाक के उस नथुने में लगायें जिधर से सांस आ-जा रही हो, अर्थात् जो स्वर चल रहा हो। जिस ओर के छोर में टोटी लगी हो उसके सामने की तरफ सिर को यथासाध्य झुकाये रहें, जैसे कान में तेल डालते समय झुकाते हैं। उदाहरणार्थ, यदि बाएँ नासिका रन्ध्र में टोटी से जल चढ़ रहा हो तो दाहिने कंधे की तरफ सिर को झुकाना चाहिए। इस प्रकार सिर को झुकाते ही दूसरे छेद से पानी बाहर जाकर जमीन पर गिरने लगेगा। इस प्रकार एक छेद से जब एक लोटा पानी निकल जाय तो दूसरे छेद में टोटी को लगाकर दूसरा लोटा पानी उसके द्वारा भीतर डालना तथा

सिर को दूसरी ओर झुकाकर सामने वाले छेद से निकालना चाहिए।

नाक से पानी को बाहर निकालते समय मुख को खुला रखें और श्वास मुख से ही लें तथा छोड़ें। नाक से साँस लेंगे तो पानी ऊपर चढ़ने लगेगा और घबड़ाकर नेति छोड़ देना पड़ेगा। अतएव नेति करते समय नाक से साँस न लें।

अगर कुछ पानी भीतर रह जाने का शक हो तो सीधे खड़े होकर कमर से इतना झुकें कि नाभि पर ९० डिग्री का कोण बन जावे। तब ठुड्डी को कण्ठकूप से लगाकर सिर को दाहिने बाएँ तथा ऊपर नीचे घुमावें। ऐसा करने से ऊपर चढ़ा हुआ जल भी नाक के छेद से बाहर निकल जायेगा। झुकने की अवस्था में दोनों हाथ पीछे कमर पर होंगे।

सर्वरोगहर जल-धौति—इस क्रिया से अजीर्ण, पित्त-वृद्धि, जीर्ण कफ व्याधि, रक्त विकार, आमवात, त्वचा के रोग, दमा, दन्त-रोग, जिह्वारोग, हृदय-रोग, कब्ज, खाँसी, कण्ठमाला, रतौंधी, आदि लगभग सभी रोग दूर हो जाते हैं।

जल-धौति इस प्रकार करें:—

पीने लायक ४-५ सेर गरम पानी अपने पास

रखें। उसे जलनेति के जल जैसा नमकीन बना लें। अब उकड़ू बैठकर उस पानी को गिलास में ले लेकर पीना शुरू करें जब तक कि पेट बिल्कुल भर न जाय, अथवा पानी पीते पीते कै होने न लग जाय। जब कै करने की इच्छा होने लगे तो खड़े होकर और आगे को झुककर बायें हाथ को पेट पर रखें और दायें हाथ की तीन अँगुलियों को मिलाकर मुख के भीतर गले तक डालें जहाँ हलक का कौआ लटकता है। उस कौए को छेड़ने से कै होने लगेगी। जब पानी बाहर निकलने लगे तब अँगुलियों को हटा लें और जब तक पानी की धार गले से बाहर निकलती रहे, तब तक अँगुलियों को गले से कुछ दूर या मुँह के बाहर ही रखें।

पानी निकलना बंद होने पर पुनः उसी प्रकार तीनों अँगुलियों को भीतर घुमावें। बार-बार ऐसा करने से पेट का सारा पानी निकल जावेगा। पानी के निकल जाने के बाद सिर को ठंढे पानी से २ मिनट तक धोएँ तथा २-३ घूँट ठंढा पानी पीयें भी।

नस-नाड़ी एवं मांस पेशियों के रोगों को दूर करने के लिये—नमकीन गरम जल-स्नान—इस स्नान से त्वचा में उत्तेजना उत्पन्न होती है, जिससे चर्म रोग मिटते हैं, तथा नस-नाड़ियों एवं मांस पेसियों का

तनाव दूर होता है। नया सर्दी-जुकाम, गठिया, गुर्दों के रोग, पुरानी खाँसी, जलोदर, साइटिका, लम्बेगो तथा मासिक धर्म की खराबियों को यह स्नान ठीक करता है। कमजोर, बूढ़ों तथा हृदय-रोग से पीड़ित रोगियों को यह स्नान नहीं देना चाहिए। विधि नीचे दी जाती है:—

एक लम्बे टब में इतना पानी भरना चाहिए कि जब रोगी उसमें नंगा होकर लेटे तो उसका सारा शरीर पानी में डूब जाय और केवल सिर पानी के बाहर रहे। जल का तापमान १००° से ११०° फा० रहना चाहिए और उसमें एक या डेढ़ सेर एप्सम साल्ट या मामूली खाने का नमक घुला रहना चाहिए। स्नान का समय ५ से २० मिनट तक रखना चाहिए। शाम को सोने से पहले यह स्नान लेना विशेष लाभ-प्रद है। इस स्नान के बाद शरीर में सर्दी नहीं लगने देना चाहिए।

स्थानीय दर्द व सूजन मिटाने के लिये रामबाण—गरम-ठंढी सेंक—पका फोड़ा, पक्षाघात, सुन्नअंग, छाती व पेड़ू का शोथ, पुरानी प्लूरिसी, बेहोशी (मेरुदण्ड पर प्रयोग करने से) स्नायु शूल, ट्युमर आदि इस सेंक से बहुत जल्द आराम होते हैं। सेंक इस प्रकार करें :—

किसी चौड़े मुँह के बर्तन में २-३ सेर उबलता हुआ पानी रखिए। जल को देर तक उबलता रखने के लिये उसे जलते हुए कोयले की अँगेठी आदि पर रखना चाहिए। मोटे फलालैन या ऊनी कपड़े का टुकड़ा या गरम तौलिया लेकर और उसके दोनों सिरों को पकड़कर उबलते जल में डुबो दें। जब वह गरम जल में पूरी तौर से भीग जावे तो उसे किसी दूसरे बड़े कपड़े में रखकर और उसे उमेठ कर भीगे तौलिये का जल निचोड़ दें। तत्पश्चात् उसे खोलकर शरीर के उस भाग पर फैला दें जिस पर सेंक देना अभीष्ट हो। यही बारबार करें और सेंक की समाप्ति पर उस स्थान को ठंढी भीगी तौलिया से पोंछ दें।

दर्द की किन्हीं-किन्हीं हालतों में गरम सेक ३ से ५ मिनट तक देने के बाद तुरंत उतनी ही देर तक या उससे थोड़ी कम देर तक ठंढी सेंक बारी बारी से देना पड़ता है।

कमर से ऊपर के अंगों के रोगों में परम लाभ-कारी पैर-की लपेट—यह लपेट कमर के ऊपर के समस्त अंग के भीतर से खराब खून को नीचे उतार देती है और नया स्वस्थ खून उसकी जगह पहुँचाता

है। इसलिये ऊपरी अंग के किसी भी रोग में यह जादू की तरह लाभ करता है।

लपेट लगाने की विधि यह है :—

पैर को फिल्ली से लेकर घुटने तक दोनों पैरों को निचोड़े हुए भीगे कपड़े से लपेट कर ऊपर से उस पर फलालैन की लपेट से उसे ढँक दें। उस वक्त यह ध्यान रखना चाहिए कि दोनों पैर गरम रहें। अधिक गरम न रहें तो बीच बीच में उस पर गरम पानी की थैली या बोतल रखकर दोनों पैरों को बराबर गम रखना चाहिए। यदि पैर ठंढा रहता हो तो यह पट्टी नीचे के हिस्से पर न देकर जंघे के ऊपर बाँधना चाहिए। लपेट देकर गले तक रोगी का समूचा शरीर कम्मल से ढँक देना और सिर को भीगी तौलिया से लपेट रखना जरूरी है।

विष खाने पर—चरक में विष चिकित्सा-प्रकरण में 'अवगाहनरक्तमोक्षणाः' कहा गया है। उस में रोगी को जल के अन्दर बिठाने की बात है। अत्यन्त विष पीड़ित रोगी को उसके कल्याणार्थ नदी में इस प्रकार डालना चाहिए कि नाक और मुँह पानी के ऊपर रहें और शेष समूची देह पानी के भीतर। इस

प्रकार रोगी को जल के सम्पर्क में रखने से उसका विष दूर होकर वह स्वस्थ हो जायगा।

चोट लगने पर—चोट लगने पर उस स्थान पर तुरन्त ठंढे पानी में भिगोये और निचोड़े हुए फलालैन या मोटे कपड़े की लम्बी पट्टी दो-तीन बार लपेट कर बाँध देनी चाहिए। अगर बर्फ मिल जाय तो उससे पानी को ठंढा कर लेना चाहिए। यह ठंढी पट्टी सूजन को बढ़ने से रोक देगी, दर्द को कम करेगी और चमड़े का रंग बदलने नहीं देगी। अगर मुमकिन हो तो चोट वाले अंग को २-३ मिनट तक बर्फ से ठंढा किये गये पानी में डुबोकर रखना चाहिए। बर्फ न मिलने पर मिट्टी के घड़े के ठंढे पानी का भी इस्तेमाल किया जा सकता है। दो-तीन मिनट बाद पीड़ित अंग को थोड़ी देर के लिये पानी से निकाल लेना चाहिए। उसके बाद पुनः पानी में डुबो देना चाहिए। आवश्यकतानुसार कम से कम २ घंटे तक यह क्रिया जारी रखनी चाहिए।

आठ-दस घंटे तक उपचार के बाद भी यदि चोट की जगह कड़ी रहे तो गरम व ठंढी पट्टी बारी-बारी से देनी चाहिए। ऐसी अवस्था में उस अंग को गुनगुने गरम पानी में डुबोये रखने या धोने तथा उसके बाद

थोड़ी थोड़ी देर के अन्तर से ठंढे पानी से भीगी कपड़े की पट्टी बाँधने से भी लाभ होता है। दिन में तीन बार आध-आध घंटे तक मोच खाये अंग को गरम और ठंढे पानी में बारी बारी से डुबकी देने से भी सख्ती में लाभ होता है।

जब मोच की पीड़ा में कमी आ जाय और वह स्थान दबाव सहन करने योग्य हो जाय तो उस स्थान पर धीरे-धीरे मालिश आरम्भ कर देनी चाहिए।

चोट से यदि रक्त भी बहता हो तो उस पर साफ कपड़े की कई तहों की ठंढी पट्टी बाँधनी चाहिए, और उस पट्टी को ठंढे पानी से तर रखना चाहिए। ऐसा करने से खून बहना रुक जायगा। यह पट्टी ५-७ मिनट के लिये रखी जाय फिर ५-७ मिनट के लिये हटा ली जाय और फिर रखी जाय। खून के बंद हो जाने पर घाव के भरने के लिये ठंढी पट्टियों का प्रयोग जारी रखना चाहिए और घाव भर जाने पर उनका लगाना बंद कर देना चाहिए।

घूंसा आदि की भीतरी चोट में उस स्थान पर भाप देना चाहिए, तत्पश्चात् कटिस्नान या मेहन-स्नान १०-१५ मिनट तक करना चाहिए।

आग आदि से जल जाने पर—पीड़ा से छुटकारा

पाने के लिये जले हुए भाग को कई घंटों तक ठंढे पानी में रखना चाहिए और उसे बराबर हिलाते रहना चाहिए। इससे न तो फफोला पड़ेगा और न घाव ही होगा, और नहीं घाव का निशान पड़ेगा। पीड़ा जब शान्त हो जाय तब रक्त निकलने वाली चोट के उपचार की तरह ही गीले कपड़े की ठंढी पट्टी लगानी चाहिए।

कपड़े में आग लगकर जब शरीर बुरी तरह जल जाय तो समूचे शरीर को ठंढे पानी से भरे बड़े हौज, तालाब या नदी में डुबा रखना आवश्यक है। जब तक जलन और दर्द दूर न हो जाय तब तक उसी प्रकार पानी में डुबा रखना चाहिए।

हड्डी के टूटने-उखड़ने पर—जब शरीर की कोई हड्डी टूट जाय या उखड़ जाय तो उसे यथास्थान बैठाकर और आराम से रखकर उस स्थान पर ठंढे जल से भीगे कपड़े की पट्टी कई तह करके बाँधनी चाहिए तथा उसे ठंढे पानी से तर करते रहना चाहिए। ऐसा करने से यदि खून भी बहता होगा तो वह भी बंद हो जायगा। दर्द रहने पर गरम और ठंढी सेंक हल्के-हल्के देनी चाहिए। यदि चोट वाला भाग कपड़े की पट्टी के सहारे ठीक स्थिति में न रखा जा सके तो उसे दफ्ती, लकड़ी की पट्टी आदि का सहारा दिया जा सकता है। ठंढी पट्टियों का प्रयोग उस वक्त तक जारी रखना चाहिए जब तक कि चोट बिल्कुल ठीक न हो जाय।

बेहोशी—बेहोशी में रोगी के कपड़ों को ढीला करके उसके चेहरे पर ठंढे पानी का छींटा दीजिए, तथा मस्तक पर ठंढे पानी से भीगी पट्टियाँ बार-बार रखिए। जब रोगी होश में आ जाय तो उसे थोड़ा-थोड़ा ठंढा ज़ल चूसने के लिये दीजिए।

हिचकी—एक गिलास हल्का गरम जल पी लेने से हिचकी बंद हो जाती है।

लू लगना—ठंढे पानी से भीगे पंखे से हवा करनी चाहिए, शरीर को ठंढे पानी से बराबर पोंछते रहना चाहिए और बर्फ से ठंढा किये हुए जल में कपड़ा भिगोकर उसकी पट्टी सिर और रीढ़ पर बदल-बदल कर रखनी चाहिए। ठंढे पानी से देर तक नहलाने से भी लाभ होता है।

कड़ी लू लगने पर सारे शरीर पर ठंढी पट्टी लपेट कर ऊपर से ठंढा पानी छिड़कते रहना चाहिए। इसमें कटिस्नान भी लाभ करता है।

बिच्छू के डंक मारने पर—डंक मारे स्थान को ठंढे पानी में डुबोकर किसी मोटे कपड़े से उसे काफी देर तक रगड़-रगड़ कर धोना चाहिए। यदि इससे ठीक न हो तो रोगी को १० मिनट का भाप-नहान देकर उसे ठंढे जल से खूब नहलाना चाहिए। उसके बाद १० मिनट का कटिस्नान देना चाहिए।

श्रीमती स्मिता पटवर्धन, प्रबन्ध संचालक, तेज कुमार बुक डिपो (प्रा.) लि. द्वारा प्रकाशित

मुद्रक : प्रोफेशनल प्रेस 10-बी, तिलकमार्ग, हजरतगंज, लखनऊ मो0 : 9336065368